

भाग
१२

श्रीवर्द्धमानाय नमः ।

अंक
७-८

जैनहितैषी

जुलाई, अगस्त १९१३



जैनसमाज ।

तार्थक्षेत्रोंके झगड़े, स्त्रियोंकी अज्ञानमय-दुःखमय दशा, शास्त्रोंकी रक्षा और प्रचारके काममें लाप्रवाही और अगु-ओंकी 'भेड़ियाघसान' बुद्धिके अन्धेर; ये सब बातें देखकर शासनदेवी धनवानों, पण्डितों और बाबुओंको सम्मिलित शक्तिसे उद्योग करनेके लिए समझा रही है ।

सं०-नाथुराम प्रेमी ।

विषय-सूची ।



- १ जैनतीर्थकरोंका शासनभेद-लेखक, श्रीयुत जुगलकिशोरजी मुद्दतार । ... ३२५
- २ लुभाव या लालच-ले०, श्रीयुत दयाचन्दजी गोयलीय बी ए. । ... ३३२
- ३ सुखका उपाय (कविता)-ले०, श्रीयुत जुगलकिशोरजी । ... ३३५
- ४ जैनलेखक और पंचतंत्र-ले०, श्रीयुत मोतीलालजी बी. ए. । ... ३३६
- ५ विधिका प्राबल्य और दौर्बल्य (कविता)-श्रीयुत जुगलकिशोरजी । ३४४
- ६ काश्मीरका इतिहास-ले०, श्रीयुत सुपार्श्वदासजी गुप्त बी. ए. । ... ३४५
- ७ शाकटायनाचार्य-... ३४९
- ८ पुस्तकपरिचय- ... ३६२
- ९ जैनकर्मवाद और तद्विषयक साहित्य-ले०, श्रीयुत मुनि जिनविजयजी । ३७३
- १० प्रतिदान (गल्प)-लेखक, श्रीयुत ज्वालादत्तजी शर्मा । ... ३८४
- ११ अहिंसा परमो धर्म:-ले०, श्रीयुत लाला लाजपतराय । ... ३९४
- १२ विश्वास (कविता)-श्रीयुत प्रेमी हजारीलालजी । ... ३९८
- १३ तीर्थोंके झगड़े कैसे मिटें ?-ले०, श्रीयुत वाडीलाल मोतीलाल शाह । ... ३९९
- १४ तीन देवियोंका संवाद (कविता) ले०, श्रीयुत मित्रसेनजी जैन, मेरठ कालेज । ... ४०३
- १५ विविध प्रसङ्ग- ... ४०५
- १६ शिक्षितोंकी उदारता-ले०, श्रीयुत अशिक्षित ... ४१७
- १७ व्यास और भीष्म- ... ४१८
- १८ परीपदेश-कुशल (कविता)-ले०, श्रीयुत मोहनचन्द सिंघई ... ४२०

नियमावली ।

१. वार्षिक मूल्य उपहारसहित ३) तीन रुपया पेशगी है । बी. पी. तीन रुपया एक आनेका भेजा जाता है ।
२. उपहारके बिना भी तीन रुपया मूल्य है ।
३. ग्राहक वर्षके आरंभसे किये जाते हैं और बीचसे अर्थात् ७ वें अंकसे । बीचसे ग्राहक हेनिवालोकें उपहार नहीं दिया जाता । आधे वर्षका मूल्य १।) रु० है ।
४. प्रत्येक अंकका मूल्य पाँच आने है ।
५. सब तरहका पत्रव्यवहार इस पतेसे करना चाहिए ।

मैनेजर-जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय.

हीराबाग, पो० गिरगांव-बंबई।

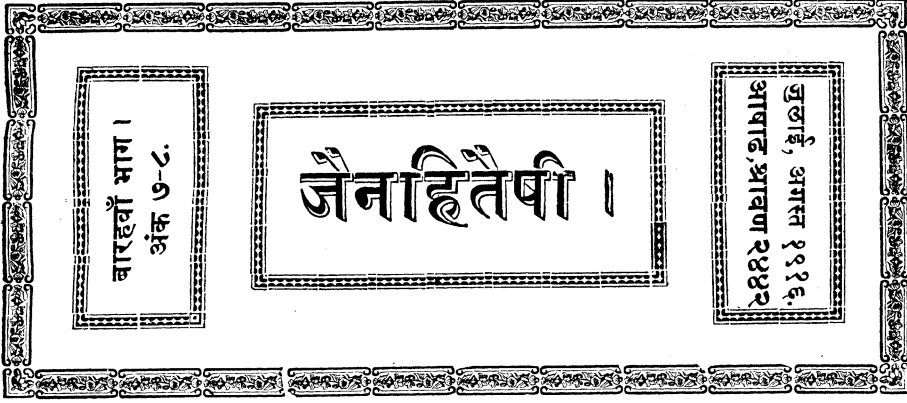
प्रार्थनायें ।

१. जैनहितैषी किसी स्वार्थबुद्धिसे प्रेरित होकर निजी लाभके लिए नहीं निकाला जाता है । इसमें जो समय और शक्तिका व्यय किया जाता है वह केवल अच्छे विचारोंके प्रचारके लिए । अतः इसकी उन्नतिमें हमारे प्रत्येक पाठकको सहायता देनी चाहिए ।
२. जिन महाशयोंको इसका कोई लेख अच्छा मालूम हो उन्हें चाहिए कि उस लेखको जितने मित्रोंको वे पढ़कर सुनः सकें अवश्य सुना दिया करें ।
३. यदि कोई लेख अच्छा न मालूम हो अथवा विरुद्ध मालूम हो तो केवल उसीके कारण लेखक या सम्पादकसे द्वेष भाव न धारण करनेके लिए सविनय निवेदन है ।
४. लेख भेजनेके लिए सभी सम्प्रदायके लेखकोंको आमंत्रण है । —सम्पादक ।

दूसरे उपहारकी सूचना ।

दूसरा उपहार अभी तक नहीं दिया गया, इसका कारण यह है कि जिन लेखक महाशयने उस लिख देना कहा है वे अवकाशाभावके कारण अब तक लिख नहीं सके हैं । तकाजा किया जा रहा है । ज्यों ही वे लिख देंगे, त्योंही उसके छपानेका प्रवन्ध कर दिया जायगा । कागज खरीदा हुआ रक्खा है । एक धर्मात्मा सज्जनने इस पुस्तकके छपानेका पूरा खर्च देनेकी स्वीकारता दे दी है ।

हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ।



सारे ही संघ सनेहके सूतसौं, संयुत हों, न रहे कोउ द्वेषी ।
प्रेमसौं पालें स्वधर्म सभी, रहैं सत्यके साँचे स्वरूप-गवेषी ॥
बैर विरोध न हो मतभेदतैं, हों सबके सब बन्धु शुभैषी ।
भारतके हितको समझें सब, चाहत है यह जैनहितैषी ॥

जैनतीर्थकरोंका शासन-भेद ।

(ले०—बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार ।)

जैनसमाजमें, श्रीवट्टकेराचार्यका बनाया हुआ 'मूलाचार' नामका एक यत्याचारविषयक प्राचीन ग्रंथ सर्वत्र प्रसिद्ध है । मूल ग्रंथ प्राकृतभाषामें है और उस पर वसुनन्दि सैद्धान्तिककी बनाई हुई 'आचारवृत्ति' नामकी एक संस्कृत टीका भी पाई जाती है । इस ग्रंथमें, सामायिकका वर्णन करते हुए, ग्रंथकर्ता महोदय लिखते हैं कि:—

“बावीसं तित्थयरा सामाइयं
संजमं उवदिसंति ।
छेदोवट्टावणियं पुण भयवं
उसहो य वीरो य ॥ ७-३२ ॥”

अर्थात्—अजितसे लेकर पार्श्वनाथपर्यंत बाईस तीर्थकरोंने सामायिक संयमका और ऋषभदेव तथा महावीर भगवान्ने 'छेदोपस्थापना' संयमका उपदेश दिया है । यहाँ मूल गाथामें दो जगह 'च' (य) शब्द आया है । एक चकारसे परिहारविशुद्धि आदि चारित्रिका भी ग्रहण किया जा सकता है । और तब यह निष्कर्ष निकल सकता है कि ऋषभदेव और महावीर भगवान्ने सामायिकादि पाँच प्रकारके चारित्रिका प्रतिपादन किया है, जिसमें छेदोपस्थापनाकी

यहाँ प्रधानता है। शेष बाईस तीर्थकरोंने केवल सामायिक चारित्रिका प्रतिपादन किया है। अस्तु। आदि और अन्तके दोनों तीर्थकरोंने छेदोपस्थापन-संयमका प्रतिपादन क्यों किया है? इसका उत्तर आचार्य महोदय नीचे की दो गाथाओंमें इस प्रकार देते हैं:—

“आचक्रिखटुं विभजिदुं
विण्णादुं चावि सुहदरं होदि ।
एवेण कारणेण दु
महन्वदा पंच पण्णात्ता ॥ ३३ ॥
आदीए दुविसोधणे णिहणे
तह सुट्ट दुरणुपालेया ।
पुरिमाय पच्छिमा विहु
कप्पाकपं ण जाणंति ॥ ३४ ॥”

टीका—“..... येस्मादन्यस्मै प्रतिपादयितुं स्वेच्छानुष्ठानं विभक्तुं विज्ञानं चापि भवति सुखतरं सामायिकं तेन कारणेन महाव्रतानि पंच प्रज्ञप्तानीति ॥ ३३ ॥”
“आदितीर्थे शिष्या दुःखेन शोधते सुष्ठु कजुस्वभावा यतः । तथा च पश्चिमतीर्थे शिष्या दुःखेन प्रतिपाल्यते सुष्ठु वक्रस्वभावा यतः । पूर्वकालशिष्याः पश्चिमकाल-शिष्याश्च अपि स्फुटं कल्पं योग्यं अकल्पं अयोग्यं न जानन्ति यतस्तत आदौ निधने च छेदोपस्थानमुपदिशत इति ॥ ३४ ॥”

अर्थात्—पाँच महाव्रतों (छेदोपस्थापना) का कथन इस बजहसे किया गया है कि इनके द्वारा सामायिकका दूसरोंको उद्देश देना, स्वयं अनुष्ठान करना, पृथक् पृथक् रूपसे भावनामें लाना सुगम हो जाता है। आदि तीर्थमें शिष्य मुश्किलसे शुद्ध किये जाते हैं; क्योंकि वे अतिशय सरल स्वभाव होते हैं। और अन्तिम तीर्थमें शिष्यजन

१ इससे पहले टीकामें गाथाका शब्दार्थ मात्र दिया है।

कठिनतासे निर्वाह करते हैं; क्योंकि वे अतिशय वक्र स्वभाव होते हैं। साथ ही इन दोनों समयोंके शिष्य स्पष्टरूपसे योग्य अयोग्यको नहीं जानते हैं। इस लिए आदि और अन्तके तीर्थमें इस छेदोपस्थापनाके उपदेशकी जरूरत पैदा हुई है। यहाँ पर यह भी प्रगट कर देना जरूरी है कि छेदोपस्थापनामें हिंसादिकके भेदसे समस्त सावद्य कर्मका त्याग किया जाता है। इस लिए छेदोपस्थापनाकी ‘पंचमहाव्रत’ संज्ञा भी है और इसी लिए आचार्य महोदयने गाथा नं० ३३ में छेदोपस्थापनाका ‘पंचमहाव्रत’ शब्दोंसे निर्देश किया है। अस्तु। इसी ग्रंथमें, आगे प्रतिक्रमणका वर्णन करते हुए, श्रीवट्टकेर स्वामीने यह भी लिखा है:—

“सपडिक्कमणो धम्मो
पुरिसस्सय पच्छिमस्स जिणस्स ।
अवराहपडिक्कमणं
मज्झिमयाणं जिणवराणं ॥ ७-१२५ ॥
जावेदु अप्पणो वा
अण्णदरे वा भवे अदीचारो ।
तावेदु पडिक्कमणं
मज्झिमयाणं जिणवराणं ॥ १२६ ॥
इरिया गोयर सुमिणादि
सव्व माचरदु मा व आचरदु ।
पुरिम चरिमाडु सव्वे
सव्वे णियमा पडिक्कमादि ॥ १२७ ॥”

अर्थात्—पहले और अन्तिम तीर्थकरका धर्म अपराधके होने और न होनेकी अपेक्षा न करके प्रतिक्रमण सहित प्रवर्त्तता है। पर मध्यके बाईस तीर्थकरोंका धर्म अपराधके होनेपर ही प्रतिक्रमणका विधान

करता है । क्योंकि उनके समयमें अपराधकी बाहुल्यता नहीं होती । मध्यवर्ती तीर्थंकरोंके समयमें जिस व्रतमें अपने या दूसरोंके अतीचार लगता है उसी व्रतसम्बन्धी अतीचारके विषयमें प्रतिक्रमण किया जाता है । विपरीत इसके आदि और अन्तके तीर्थंकरों (ऋषभ और महावीर) के शिष्य ईर्या, गोचरी और स्वप्नादिसे उत्पन्न हुए समस्त अतीचारोंका आचरण करो या मत करो उन्हें समस्त प्रतिक्रमण दंडकोंका उच्चारण करना होता है । आदि और अन्तके दोनों तीर्थंकरोंके शिष्योंको क्यों समस्त प्रतिक्रमण—दंडकोंका उच्चारण करना होता है और क्यों मध्यवर्ती तीर्थंकरोंके शिष्य उनका आचरण नहीं करते हैं ? इसके उत्तरमें आचार्य महोदय लिखते हैं:—

“ मज्झिमया दिढ्ढुद्धी
एयग्गमणा अमोहलक्खाय ।
तम्हा हु जमाचरंति
तं गरहंता विसुज्जंति ॥ १२८ ॥
पुरिम चरिमाडु जम्हा
चलचित्ता चेव मोहलक्खाय ।
तो सव्व पडिक्कमणं
अंधलय घोड-दिहंतो ॥ १२९ ॥”

अर्थात्—मध्यवर्ती तीर्थंकरोंके शिष्य विस्मरणशीलतारहित दृढबुद्धि, स्थिरचित्त और मूढतारहित परीक्षापूर्वक कार्य करनेवाले होते हैं । इस लिए प्रगटरूपसे वे जिस दोषका आचरण करते हैं उस दोषसे आत्मनिन्दा करते हुए शुद्ध हो जाते हैं । पर भादि और अन्तके दोनों तीर्थंकरोंके

शिष्य चलचित्त और मूढमना होते हैं—शास्त्रका बहुत बार प्रतिपादन करने पर भी उसे नहीं जानते । उन्हें क्रमशः ऋजु-जड और वक्र-जड समझना चाहिए—इस लिए उनके समस्त प्रतिक्रमण-दंडकोंके उच्चारणका विधान किया गया है और इस विषयमें अंधे घोड़ेका दृष्टान्त बतलाया गया है । टीकाकारने इस दृष्टान्तका जो स्पष्टीकरण किया है उसका भावार्थ इस प्रकार है:—

“ किसी राजाका घोड़ा अंधा हो गया । उस राजाने वैद्यपुत्रसे घोड़ेके लिए ओषधि पूछी । वह वैद्यपुत्र वैद्यक नहीं जानता था और वैद्य किसी दूसरे ग्राम गया हुआ था । अतः उस वैद्य—पुत्रने घोड़ेकी आँखको आराम करनेवाली समस्त ओषधियोंका प्रयोग किया और उनसे वह घोड़ा नीरोग हो गया । इसी तरह साधु भी एक प्रतिक्रमण दंडकमें स्थिरचित्त नहीं होता हो तो दूसरेमें होगा, दूसरेमें नहीं तो तीसरेमें, तीसरेमें नहीं तो चौथेमें, इस प्रकार सर्व प्रतिक्रमण-दंडकोंका उच्चारण करना न्याय है । इसमें कोई विरोध नहीं है; क्योंकि सब ही प्रतिक्रमण-दंडक कर्मके क्षय करनेमें समर्थ हैं । ”

मूलाचारके इस सम्पूर्ण कथनसे यह बात स्पष्टतया विदित होती है कि समस्त जैनतीर्थंकरोंका शासन एक ही प्रकारका नहीं रहा है । बल्कि समयकी आवश्यकतानुसार—लोकस्थितिको देखते हुए—उसमें कुछ परिवर्तन जरूर होता

रहा है। और इस लिए जिन लोगोंका ऐसा खयाल है कि जैनतीर्थकरोंके उपदेशमें परस्पर रंचमात्र भी भेद या परिवर्तन नहीं होता—जो वचनवर्गणा, एक तीर्थकरके मुँहसे खिरती है वही दूसरे तीर्थकरके मुँहसे निकलती है, उसमें जरा भी फेरफार नहीं होता—वह खयाल निर्मूल जान पड़ता है। शायद ऐसे लोगोंने तीर्थकरोंकी वाणीको फोनोग्राफके रिकार्डोंमें भरे हुए मजमूनके सदृश समझ रक्खा है! परन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं है। ऐसे लोगोंको मूलाचारके उपर्युक्त कथन पर खूब ध्यान देना चाहिए।

यहाँ पर उन तत्त्वबुभुत्सुजीका ध्यान भी आकर्षित किया जाता है जिन्होंने 'जैनसिद्धान्तभास्कर' की चौथी किरणमें 'आवश्यकता' शीर्षक लेख दिया था और जिन्होंने बादको अपने पूर्व लेखका स्पष्टीकरण करनेके लिए "सत्यखोजी ध्यान दें" इस नामका एक दूसरा लेख जून सन् १९१९ के 'जैन-तत्वप्रकाशक' में प्रकाशित कराया था। तत्त्वबुभुत्सुजीने अपने इन लेखों द्वारा यह प्रतिपादन किया है कि, "पंच महाव्रतादि तेरह प्रकारका चारित्र श्रीमहावीर स्वामीके समयसे चला है। इसके पहले (ऋषभ देवके समयसे) सामायिकादि पंच प्रकार ही चारित्र था।" साथ ही अपनी ऐतिहासिक दृष्टिसे यह नतीजा भी निकाला है कि, "श्रीमहावीरस्वामीके पहले हिंसा आदि पापोंको व्रतरूपसे (विशेषरीतिसे) निरूपण करनेकी आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि आज-

से २५०० वर्ष पहले हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रहमें अत्यन्त गृद्धता आदि पापोंने स्वर्गमयी इस भारत भूमिको कल्कित नहीं किया था, बादको इनका प्रचार देखकर श्रीमहावीर स्वामीने इनके विरोधी व्रत, समिति और गुप्तिरूप चारित्रका निरूपण किया।"

तत्त्वबुभुत्सुजीका यह समस्त कथन छपे हुए ज्ञानार्णवके इन दो श्लोकों पर अवलम्बित है:—

“सामायिकादिभेदेन
पंचधा परिकीर्तितम् ।
ऋषभादिजिनैः पूर्वं
चारित्रं सप्रपंचकम् ॥ ८-२ ॥
पंचमहाव्रतमूलं
समितिप्रसरं नितान्तमनवद्यम ।
गुप्तिफलभारनघ्नं
सन्मतिना कीर्तितं वृत्तम् ॥ ३ ॥”

इन श्लोकों परसे तत्त्वबुभुत्सुजीने जो सिद्धान्त निकाला है उसका इन दोनों श्लोकोंमें कहीं भी स्पष्टोलेख नहीं है। परन्तु मूलाचारका उपर्युक्त कथन एक विशेष सुहेतुक और स्पष्ट ऐतिहासिक कथन है। उसके साथ—उसकी रोशनीमें—इन श्लोकोंको पढ़नेसे इस विषयमें कोई संदेह नहीं रहता और न यह कहनेमें कुछ संकोच ही होता है कि इन श्लोकोंका वह अभिप्राय कदापि नहीं है जो तत्त्वबुभुत्सुजीने समझा है और जिसे उन्होंने खींच खींचकर दूसरोंको समझानेकी चेष्टा की है। वास्तवमें इन श्लोकोंका विषय एक सामान्य और चल-ताहुआ कथन है—किसी ऐतिहासिक दृष्टिसे ये

श्लोक लिखे हुए मालूम नहीं होते । साथ ही ज्ञानार्णवमें इनकी स्थिति भी बहुत संदेह-जनक जान पड़ती है । आश्चर्य नहीं कि ये दोनों श्लोक वहाँ पर क्षेपक हों । क्योंकि पहले श्लोक (नं० २) में जिस सामायिकादि पंचप्रकारके चारित्रका उल्लेख है उसका, तेरह प्रकारके चारित्रकी तरह, क्रमशः अलग अलग वर्णन इस ग्रंथमें आगे या पीछे कहीं भी नहीं है और न वर्णन न करनेके विषयमें कोई शब्द ही दिया है । इससे पहला श्लोक कुछ अनावश्यक और असम्बंधित जान पड़ता है । और दूसरे श्लोक (नं० ३) में जो तेरह प्रकारके चारित्रका कथन है वही कथन उसके बादके इन दो श्लोकोंमें भी पाया जाता है:—

“ पंचपंचत्रिभिर्भेदैर्यदुक्तं मुक्तसंशयैः ।
भवभ्रमणभीतानां चरणं शरणं परम् ॥ ४ ॥
पंचव्रतं समित्पंच गुतित्रयपवित्रितम् ।
श्रीवीरवदनोद्गीर्णं चरणं चन्द्रनिर्मलम् ॥ ५ ॥ ”

इन दोनों श्लोकोंके मौजूद होते हुए श्लोक नं० ३ बिल्कुल व्यर्थ पड़ता है और इस व्यर्थताका तब और भी अधिक समर्थन होता है जब ज्ञानार्णवकी एक हस्तलिखित प्रतिमें, जो कि विक्रम संवत् १८१६ की लिखी हुई है और प्रायः शुद्ध है, श्लोक नं० ३ से पहले श्लोक नं० ५ को देखते हैं । श्लोक नं० ३ और नं० ५ दोनोंका विषय एक है—दोनोंमें लिखा है कि महावीर स्वामीने (महावीर स्वामीने ही, ऐसा नहीं) पाँच व्रत, पाँच समिति और तीन गुप्तिरूपी चारि-

त्रका उपदेश दिया—एक ही बातको प्रतिपादन करनेवाले दो श्लोकोंके इस तरह पर एक साथ रखे जानेकी कोई वजह नहीं हो सकती । इनमेंसे किसी एकका ही संगठन यहाँ पर ठीक बैठता है । हो सकता है कि श्लोक नं० ३ क्षेपक न हो बल्कि शेष तीनों श्लोक ही क्षेपक हों । क्योंकि ऐसा होने पर भी कथनके सिलसिले और सम्बंधादिमें कुछ बाधा नहीं पड़ती । परन्तु कुछ भी हो इसमें संदेह नहीं कि विवादस्थ श्लोकों (नं० २-३) की स्थिति संदेहजनक जरूर है । अस्तु । इन सब बातोंके सिवाय जब पहले श्लोक (नं० २) में ऋषभादि जिनके द्वारा सामायिकादि पंच प्रकारके चारित्रका विस्तारसहित वर्णन किया जाना लिखा है और पंच प्रकारके चारित्रमें छेदोपस्थापना भी एक भेद है, जिसे तत्त्वबुभुत्सुजीने स्वीकार किया है, तब फिर तत्त्वबुभुत्सुजीका यह कहना कि, महावीर स्वामीके समयसे ही पंचमहाव्रतका कथन चला है, कहाँ तक युक्तिसंगत और विचारपूर्ण हो सकता है, इसे पाठक स्वयं समझ सकते हैं । मालूम होता है कि तत्त्वबुभुत्सुजीका ध्यान छेदोपस्थापनाके स्वरूप पर ही नहीं पहुँचा । अन्यथा, उन्हें इतना कष्ट उठानेकी जरूरत न पड़ती । छेदोपस्थापनाका अर्थ ऊपर साफ शब्दोंमें यह बतलाया गया है कि ‘ जिसमें हिंसादिकके भेदसे समस्त सावद्य कर्मका त्याग किया जाता है उसे छेदोपस्थापना कहते हैं । ’

साथ ही मूलाचारके आधार पर यह भी प्रगट किया गया है कि ' छेदोपस्थापनाकी पंचमहाव्रत संज्ञा भी है । ' अस्तु । 'तत्त्वार्थ-राजवार्तिक'में भट्टाकलंकदेवने भी छेदोपस्थापनाका ऐसा ही स्वरूप प्रतिपादन किया है—

“ सावद्यं कर्म हिंसादिभेदेन-
विकल्पनिवृत्तिः छेदोपस्थापना । ”

इसी ग्रंथमें अकलंकदेवने यह भी लिखा है कि सामायिककी अपेक्षा व्रत एक है और छेदोपस्थापनाकी अपेक्षा उसके पाँच भेद हैं । यथा:—

“ सर्वसावद्यनिवृत्तिलक्षणसामायिका
पेक्षया एकं व्रतं, भेदपरतंत्रच्छेदोपस्था-
नापेक्षया पंचविधं व्रतम् । ”

इसके सिवाय श्रीवीरनन्दि आचार्यने, ' आचारसार ' ग्रंथके पाँचवें अधिकारमें, छेदोपस्थापनाका जो निम्नस्वरूप वर्णन किया है उससे इस विषयका और भी स्पष्टीकरण हो जाता है । यथा:—

“ व्रतसमितिगुणैः
पंच पंच त्रिभिर्मतैः ।
छेद्वैभेदैरुपेत्यार्थं
स्थापनं स्वस्थितिक्रिया ॥ ६ ॥
छेदोपस्थानं प्रोक्तं
सर्वसावद्यवर्जने ।
व्रतं हिंसाऽनृतस्तेया ।
ब्रह्म संगेष्वसंगमः ॥ ७ ॥

अर्थात्—पाँच व्रत, पाँच समिति और तीन गुप्ति नामके छेदों—भेदोंके द्वारा अर्थको प्राप्त होकर जो अपने आत्मामें स्थिर होनेरूप

क्रिया है उसको छेदोपस्थापना या छेदोपस्थापन कहते हैं । समस्त सावद्यके त्यागमें छेदोपस्थापनाको हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रहसे विरतिरूप व्रत कहा है ।

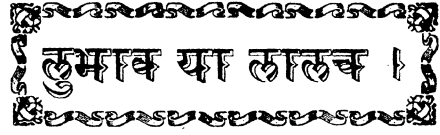
यहाँपर यह बात समझमें आसकती है कि यदि यह माना जाय कि आजसे ढाई हजार वर्ष पहले सावद्य कर्ममें हिंसादिक भेदोंकी कल्पना नहीं थी तो साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि उस वक्त छेदोपस्थापना चारित्रिका भी अस्तित्व नहीं था । क्योंकि छेदोपस्थापनाका त्यागभाव हिंसादिक भेदोंकी अपेक्षा रखता है । इसी प्रकार यदि यह कहा जाय कि महावीर स्वामीसे पहले हिंसादिक पापोंका अस्तित्व ही नहीं था तो उसके साथ ही यह भी बतलाना होगा कि वह कौनसा सावद्य कर्म था जिसका उस वक्त सामायिक द्वारा त्याग कराया जाता था ? अन्यथा, सामायिक चारित्रिके अस्तित्वसे भी इनकार करना होगा और इस तरह पंच प्रकारके चारित्रिका ही लोप करना पड़ेगा । आश्चर्यकी बात है कि तत्त्वबुभुत्सुजी महावीर स्वामीसे पहले, ऋषभ आदिके समयमें, पंचप्रकारके चारित्रिका तो अस्तित्व मानते हैं, परन्तु हिंसादिक पापों और उनके विरोधी पंचमहाव्रतादिकोंका अस्तित्व स्वीकार नहीं करते ! इससे कहना पड़ता है कि उनका यह सब कथन बिल्कुल निःसार और भ्रममूलक है । इसमें कुछ भी तथ्य नहीं है । जरूरत होनेपर ऐसे बहुतसे प्रमाण उपस्थित किये जा सकते हैं जिनसे यह सिद्ध होता है

कि महावीरं स्वामीसे पहले हिंसा, झूठ, चोरी और मैथुनादिक पापोंका बहुत कुछ प्रचार था । वास्तवमें हिंसादिक पाप भी हमेशासे हैं और उनके विरोधी व्रत नियमादिकोंका अस्तित्व भी (किसी न किसी रूपमें) हमेशासे पाया जाता है । यह दूसरी बात है कि कोई उन्हें थोड़ेहीमें समझ लेता है और किसीके लिए उनका विशेष खुलासा करनेकी जरूरत होती है । कोई 'रागादिक भावोंका उत्पन्न होना हिंसा और उनका उत्पन्न न होना अहिंसा' इतने परसे ही हिंसा अहिंसाका अथवा पाप-सावध और व्रत-चारित्र्यका संपूर्ण रहस्य समझकर अपना आचरण यथेष्ट बना लेते हैं और किन्हींके वास्ते उनके भेद-प्रभेदोंका बहुत कुछ तफसीलके साथ वर्णन करना होता है । यहाँ तक कि उन भेद-प्रभेदोंको अलग अलग नियम करार देनेकी (स्थापित करनेकी) जरूरत पड़ती है और फिर उन नियमोंमें भी जिनका आचरण सर्वोपरि प्रधान और अधिक आवश्यक जान पड़ता है उन्हें मूलगुण करार दिया जाता है और शेषको उत्तर गुण, तब कहीं उनसे यथेष्ट आचरण बन सकता है । इसीसे सर्व समयोंके मूल गुण कभी एक प्रकारके नहीं होसकते । किसी समयके शिष्य संक्षेपप्रिय होते हैं और किसी समयके विस्ताररुचि-वाले । कभी लोगोंमें ऋजु जडताका अधिक

संचार होता है, कभी वक्र-जडताका और कभी इन दोनोंसे अतीत अवस्था होती है । किसी समयके मनुष्य स्थिरचित्त, दृढबुद्धि और बलवान् होते हैं और किसी समयके चलचित्त, विस्मरणशील और निर्बल । कभी लोकमें मूढ़ता बढ़ती है और कभी उसका हास होता है । इस लिए जिस समय जैसी जैसी प्रकृति और योग्यताके शिष्योंकी-उपदेशपात्रोंकी-बहुलता होती है उस समय उस वक्तकी जनताको लक्ष्य करके तीर्थकरोंका उसके उपयोगी वैसा ही उपदेश तथा वैसा ही व्रतनियमादिकका विधान होता है । उसीके अनुसार मूलगुणोंमें भी हेर फेर हुआ करता है । परन्तु इस भिन्न प्रकारके उपदेश, विधान या शासनमें परस्पर उद्देश्य-भेद नहीं होता । समस्त जैनतीर्थकरोंका वही मुख्यतया एक उद्देश्य 'आत्मासे कर्ममलको दूर करके उसे शुद्ध, सुखी निर्दोष और स्वाधीन बनाना' होता है । दूसरे शब्दोंमें यों कह सकते हैं कि, संसारी जीवोंको संसार-रोग दूर करनेके मार्ग पर लगाना ही जैनतीर्थकरोंके जीवनका प्रधान उद्देश्य होता है । अस्तु । एक रोगको दूर करनेके लिए जिस प्रकार अनेक औषधियाँ होती हैं और वे अनेक प्रकारसे व्यवहारमें लाई जाती हैं; रोगशांतिके लिए उनमेंसे जिस वक्त जिस जिस औषधिको

जिस जिस विधिसे देनेकी जरूरत होती है वह उस वक्त उसी विधिसे दी जाती है— इसमें न कोई विरोध होता है और न कुछ बाधा आती है, उसी प्रकार संसाररोग या कर्मरोगको दूर करनेके भी अनेक साधन और उपाय होते हैं और जिनका अनेक प्रकारसे प्रयोग किया जाता है, उनमेंसे तीर्थंकर देव अपनी अपनी समयकी स्थितिके अनुसार जिस जिस उपायका जिस जिस रीतिसे प्रयोग करना उचित समझते हैं उसका उसी रीतिसे प्रयोग करते हैं। उनके इस प्रयोगमें किसी प्रकारका विरोध या बाधा उपस्थित होनेकी संभावना नहीं हो सकती। इन्हीं सब बातों पर मूलाचारके विद्वान् आचार्य महोदयने, अपने ऊपर उल्लेख किये हुए वाक्यों द्वारा, अच्छा प्रकाश डाला है और अनेक युक्तियोंसे जैनतीर्थंकरोंके शासन-भेदको भले प्रकार प्रदर्शित और सूचित किया है।

आशा है कि इस लेखको पढ़कर सर्व साधारण जैनी भाई, तत्त्वबुभुत्सुजी और अन्य ऐतिहासिक विद्वान्, ऐतिहासिक क्षेत्रमें, कुछ नया अनुभव प्राप्त करेंगे और साथ ही इस बातकी खोज लगायेंगे कि जैनतीर्थंकरोंके शासनमें और किन किन बातोंका परस्पर भेद रहा है।



[ले०—वाबू दयाचन्द्रजी गोयलीय बी. ए.]

आकांक्षा मनुष्यको स्वर्गमें अवश्य ले जा सकती है, परंतु वहाँ रहनेके लिए मनुष्यको अपने मनको सर्वथा स्वर्गीय पदार्थोंकी ओर लगा देना चाहिए; कारण कि लालच मनुष्यको अपनी ओर खींचता है, पवित्रतासे अपवित्रताकी ओर ले जाता है और आकांक्षासे वासनाकी ओर मनको आकर्षित करता है। जब तक ज्ञानमें विशुद्धि और विचारोंमें पवित्रता नहीं हो जाती, आकांक्षाका स्थिर रहना कठिन है। आकांक्षाकी प्रारम्भिक अवस्थामें लोभ प्रबल होता है और शत्रु समझा जाता है, परन्तु स्मरण रहे इसी अपेक्षा यह शत्रु है कि जिसको यह लुभाता है वह स्वयं अपना शत्रु है। परंतु इससे मनुष्यकी निर्बलता और अपवित्रताका पता लगता है, इस अपेक्षा इसे मनुष्यका मित्र और आत्मिक उन्नतिके लिए आवश्यक संमझना चाहिए। बुराईको दूर करने और भलाईको ग्रहण करनेके उद्योगमें यह साथ रहता है। किसी बुराईको सर्वथा दूर करनेके लिए यह आवश्यक है कि वह बुराई साफ जाहिर हो जाय और यह काम अर्थात् बुराईको जाहिर कर देना लुभाव या लालचका है।

लोभ उस वासनाको भड़काता है जिसको मनुष्यने अपने वशमें नहीं किया है और जब तक वह उसे वशमें नहीं कर लेगा

तब तक बराबर लोभ मनुष्यको दबाता रहेगा । अपवित्रता पर लोभका असर होता है । पवित्रता पर लोभका वश नहीं चलता ।

लोभ उस समय तक आकांक्षायुक्त मनुष्यके मार्गमें बाधक रहता है जब तक कि वह ईश्वरीय ज्ञानके संसारमें प्रवे- नहीं पाता । वहाँ पहुँच कर लोभ उसका पीछा नहीं कर सकता । जब मनुष्यको आकांक्षा उत्पन्न होने लगती है तभीसे वह लुभाया जाने लगता है । आकांक्षा मनुष्यकी बुराई और भलाई दोनोंको प्रगट कर देती है कि जिससे मनुष्यको अपनी वास्तविक दशाका हाल मालूम हो जाय; कारण कि जब तक मनुष्य अपनेको अच्छी तरह नहीं जान लेता, अपनी बुराई भलाईको नहीं समझ लेता, तब तक वह अपने ऊपर जय नहीं प्राप्त कर सकता । जो मनुष्य विषय वासनाओंमें लिप्त हो रहा है उसके विषयमें यह नहीं कहा जा सकता कि वह नीचेकी ओर लुभाया जा रहा है । कारण कि लुभाव ही इस बातको प्रगट कर रहा है कि वह उच्चावस्थाके लिए उद्योग कर रहा है । विषयलभ्यता उसी मनुष्यमें होती है जिसे अभी आकांक्षा भी उत्पन्न नहीं हुई है । उसे केवल भोगविलासोंकी इच्छा है और वह उन्हींकी प्राप्तिसे प्रसन्न होता है । ऐसा मनुष्य नीचेकी ओर नहीं लुभाया जा सकता; कारण कि वह गिरेगा क्या, अभी अपने स्थानसे उठा भी नहीं है

२

आकांक्षा इस बातको सूचित करती है कि मनुष्यने कुछ उन्नति की है और इस लिए वह फिर नीचे गिर सकता है । इसी भावका नाम जो फिर मनुष्यको ऊँचेसे नीचे उतार लाता है, लालच या लुभाव (Temptation) है । मनुष्यको लुभानेवाली चीजें अपवित्र विचार और इन्द्रियोंके भोग विलासोंकी इच्छायें होती हैं । यदि हृदयमें कामकी इच्छा नहीं है तो लालचका कुछ असर नहीं हो सकता । लालच मनुष्यके भीतर है न कि बाहर । जब तक मनुष्यको इस बातका अनुभव नहीं हो जाता लालचका समय बढ़ता जाता है । जब तक मनुष्य बाहरी चीजोंसे यह समझ कर बचता रहता है कि लालच इनमें है और अपनी अपवित्र वासनाओंको नहीं त्यागता, तब तक उसका लालच बढ़ता जायगा और उसका पतन होता रहेगा । जब मनुष्य इस बातको स्पष्ट रूपसे देख लेता है कि बुराई मेरे अंदर है बाहर नहीं, तब वह उन्नति कर सकेगा— उसका लालच घट जायगा और वह बहुत शीघ्र अपनी लोभकषाय पर पूर्ण जय प्राप्त कर सकेगा ।

लालच दुःखमय है परंतु यह नित्य नहीं है । यह केवल नीचेसे ऊपर जानेका मार्ग है । जीवनकी पूर्णता आनंदमय है दुःखमय नहीं । लोभ निर्बलता और पराजयके साथ रहता है, परंतु मनुष्य शक्ति और विजयके लिए है । दुःखकी उपस्थिति इस बातका चिह्न है कि उन्नति की जाय । जो मनुष्य

नित्य प्रति अपनी आकांक्षाओंको बढ़ाता है वह कभी यह ख्याल नहीं करता कि लोभ पर कभी विजय नहीं प्राप्त की जा सकती । वह अपने ऊपर विजय प्राप्त करनेके लिए दृढ़ संकल्प रखता है । बुराई पर सन्तोष कर लेना अपनी पराजयको स्वीकार कर लेना है और उससे सूचित होता है जो युद्ध अपनी वासनाओंके विरुद्धमें किया गया था उसे छोड़ दिया है, भलाईको त्याग दिया है और बुराईको ग्रहण कर लिया है ।

जिस तरह उत्साही मनुष्य विघ्नबाधाओंकी परवा नहीं करता किंतु सदा उन पर विजय प्राप्त करनेकी धुनमें लगा रहता है उसी तरह निरंतर आकांक्षा रखनेवाला मनुष्य लोभसे लुभाया नहीं जाता, किंतु इस बातकी जोहमें रहता है कि किस तरहसे अपने मनकी रक्षा करे । लुभाया वही जाता है जो सबल और सुरक्षित नहीं होता ।

मनुष्यको उचित है कि लोभ लालचके भाव और अर्थपर अच्छी तरहसे विचार करे; कारण कि जब तक उसका अच्छी तरह ज्ञान प्राप्त नहीं किया जायगा, तब तक उस पर जय प्राप्त नहीं की जा सकती । जिस तरह बुद्धिमान् सेनापति विरोधी दल पर आक्रमण करनेसे पहले शत्रुकी सेनाका पूरा पूरा हाल जाननेका उद्योग करता है, उसी तरह जो मनुष्य लोभको दूर करना चाहता है उसे इस बात पर पूर्ण रूपसे विचार करना

चाहिए कि किस तरह उसकी उत्पत्ति हुई और किस तरह उसे दूर किया जा सकता है ।

मनुष्यकी कषायें जितनी तीव्र होती हैं, उतना ही भयंकर उसे लालच होता है और जितना गहरा मनुष्यका स्वार्थ और अभिमान होता है, उतना ही प्रबल उसका लोभ होता है ।

यदि मनुष्य सत्यके जाननेका इच्छुक है तो उसे पहले अपने आपको जानना चाहिए । यदि अपने आपको जाननेका उद्योग करते समय अपनी त्रुटियाँ अथवा अपने अवगुण प्रगट हों, तो उनसे घबराना नहीं चाहिए किंतु उनका हृदयसे स्वागत करना चाहिए । उनके प्रगट होनेसे उसे अपना ज्ञान होगा और अपना ज्ञान होनेसे आत्माको संयम और इंद्रियदमनमें सुभीता होगा ।

जो मनुष्य अपनी भूलों और त्रुटियोंको प्रगट होते नहीं देख सकता, किंतु उन्हें छिपाया चाहता है, वह सत्यमार्गका अनुगामी नहीं हो सकता । उसके पास लालचको पराजित करनेके लिए काफी सामान नहीं है । जो मनुष्य अपनी नीच प्रकृतिका निर्भय होकर सामना नहीं कर सकता वह त्यागके ऊँचे पथरिले शिखर पर नहीं चढ़ सकता ।

लुभाये जानेवाले मनुष्यको यह जानना चाहिए कि वह स्वयं अपनेको लुभाता है, उसके शत्रु उसके भीतर हैं । चापलूस जो उसे बहकाते हैं, ताने जो उसे दुख देते हैं और शोले जो जलाते हैं, वे सब उस अज्ञानताके

भीतरी क्षेत्रसे निकलते हैं जिसमें वह अब तक रहा है । यह जान कर उसे इस बातका निश्चय होना चाहिए कि मुझे बुराईपर विजय प्राप्त करना है ।

जब मनुष्य खूब लुभाया जाय तो उसे शोक नहीं करना चाहिए किंतु हर्ष मनाना चाहिए कि इससे उसकी शक्तिकी परीक्षा होती है और उसकी निर्बलता प्रगट होती है । जो मनुष्य अपनी कमजोरीको ठीक ठीक जानता है और उसको मानता है, वह शक्तिके प्राप्त करनेमें आलस न करेगा ।

मूर्खजन अपने पापों और अपनी त्रुटियोंके लिए दूसरोंको दोष दिया करते हैं, परंतु सत्यके प्रेमी अपने आपको दोष दिया करते हैं । अपने चालचलनकी जिम्मेवारी मनुष्यको अपने ऊपर लेनी चाहिए और यदि कभी गिर जाय, तो यह कभी न कहना चाहिए कि यह चीज अथवा वह चीज, यह मनुष्य अथवा वह मनुष्य दोषके भागी हैं । दूसरे लोग हमारे लिए अधिकसे अधिक यह कर सकते हैं कि वे हमारी बुराई अथवा भलाईके प्रगट होनेके अवसर उपस्थित कर दें, किंतु वे हमें अच्छे या बुरे नहीं बना सकते ।

पहले पहले लोभ बहुत तीव्र होता है और उसके दबानेमें बड़ी कठिनाई मालूम होती है । परंतु यदि मनुष्य दृढ़ बना रहे और उसके बहकावेमें न आवे, तो वह धीरे

धीरे अपने आत्मिक शत्रु पर विजय प्राप्त कर लेगा और अंतमें उसे सत्यका ज्ञान हो जायगा । शत्रु कौन है? हमारे ही काम, स्वार्थ और अभिमान हमारे शत्रु हैं । यदि इन्हें नष्ट कर दिया जाय, तो बुराई भी नष्ट हो जाती है और भलाई पूर्ण कांति और प्रभाके लय प्रगट हो जाती है । *

सुखका उपाय ।

(ले०—बाबू जुगलकिशोरजी मुस्तार ।)

(१)

जगके पदार्थ सारे,
वतैं इच्छानुकूल जो तेरी ।
तो तुझको सुख होवे,
पर ऐसा हो नहीं सकता ॥

(२)

क्योंकि परिणमन उनका,
शाश्वत उनके अधीन ही रहता ।
जो निज अधीन चाहे,
वह व्याकुल व्यर्थ होता है ॥

(३)

इससे उपाय सुखका,
सच्चा, स्वाधीन वृत्ति है अपनी ।
राग-द्वेष-विहीना,
क्षणमें सब दुःख हरती जो ॥

* जेम्स एलनकी From Passion to Peace नामक पुस्तकके Temptation शीर्षक निबंधका भाषानुवाद ।

जैन लेखक और पंचतंत्र । (गताङ्ककी पूर्ति ।)

ले०-बाबू मोतीलालजी जैन बी. ए. ।

कोज गार्टनेने इस पंचाख्यानका ही प्राचीन गद्य-पाठका केवल अनुवाद किया लैटिन नाम ' टैक्सट सिम्प्लिसिअर ' अथवा उसको संक्षेपमें लिख दिया, परन्तु अर्थात् ' सरलावृत्ति ' रक्खा था और सरलावृत्तिके कर्ताने अपना ग्रंथ एक नये बैनफेने इसी ग्रंथको एक प्राचीन बौद्ध ग्रंथ-दंगसे और एक नई शैलीसे लिखा । वह का किसी ब्राह्मणद्वारा किया हुआ रूपान्तर उँची श्रेणीका कथाकार है, जो यह ज्ञानता समझा था । इस सरलावृत्ति और प्राचीन है कि श्रोताओं अथवा पाठकोंको मनोविनोद तंत्राख्यायिकामें इतनी अधिक भिन्नता है द्वारा किस तरह उपदेश दिया जा सकता कि हम इसे एक सर्वथा नया ग्रंथ कह है; और उसने अपनी ओरसे जो कथायें सकते हैं जो तंत्राख्यायिकाके आशयको लेकर बढाई हैं वे पंचतंत्रके समस्त कथा-संग्रहमें लिखा गया है । निस्संदेह यह ग्रंथ किसी सर्वोत्तम हैं । प्राचीन आवृत्तियोंमें चौथे और राजा या उसके मंत्रीकी आज्ञासे लिखा गया पाँचवें तंत्र बहुत ही संक्षेपमें दिये हैं; सर- होगा । उस राजा या मंत्रीको उस समय जो लावृत्तिके कर्ताने, जिसके नामतकका पता पंचतंत्र प्रचलित था उसकी एक नई आवृ- नहीं है, उनको बढा कर पहले तीन तंत्रोंके त्तिकी आवश्यकता हुई होगी । बहुत कुछ समान कर दिया । यह काम

उसने इस तरह किया है । उसने तीसरे और उसने इस तरह किया है । उसने तीसरे और चौथे तंत्रोंकी और प्राचीन पाँचवे तंत्रकी,— जिसमें दो कथायें पीछे से मिलाई हुई जान पड़ती हैं—कथाओंके कुछ अंशोंको निकाल कर उनकी जगह पर एक सर्वथा नई कथा कर उनकी जगह पर एक सर्वथा नई कथा रख दी, जिसमें व्यापक कथाके सिवाय ग्यारह अवान्तर कहानियाँ और हैं ।

इस आवृत्तिका प्रायः ठीक ठीक ज्ञान केवल कीलहार्न और बुल्हरके संस्करणसे हो सकता है, जो बम्बईकी संस्कृत सीरीजके पहले, तीसरे और चौथे अंकोंमें प्रकाशित

१ Textus Simplicior. २ जिसका पाठ सरल हो अर्थात् जो बहुत पेचीदा और अलंकृत न हो ।

हुआ है । परन्तु इन दोनों विद्वानोंको केवल एक हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई थी और यह प्रति भी प्राचीन नहीं और उसमें कमसे कम आठ कथायें पीछेसे जोड़ी हुई थीं । इस संस्करणका सन् १८८४ ई० में लूबविग फ्रिगने जर्मन भाषामें और सन् १८८९-७९ ई० में एच. जी. वान डर वालसने डचभाषामें अनुवाद किया ।

इस आवृत्ति (सरलावृत्ति) की बहुतसी हस्तलिखित प्रतियोंकी मैंने परीक्षा की और उनके पाठमें बहुत अंतर पाया । नई प्रतियोंके तैयार करनेमें प्राचीन (हस्तलिखित) प्रतियोंसे बार बार नकल करनी पड़ी है और मिलान करना पड़ा है, इस लिए प्राचीन प्रतियाँ जीर्ण हो गई हैं । जैन विद्वानोंका कर्तव्य है कि वे अपने संप्रदायके एक अत्यन्त सफल लेखकके उपकारका बदला चुकानेके लिए इस आवृत्ति (सरलावृत्ति) की उत्तम और प्राचीन प्रतियोंकी—ऐसी प्रतियोंकी जिनमें प्रशस्ति हो—खोज करें; तभी यह संभव होगा कि लेखकके नाम और समयका पता लगाया जाय और ' सरलावृत्ति ' जैसे भद्दे और अनुपयुक्त नामको दूर कर दिया जाय । निस्संदेह ऐसी हस्तलिखित प्रतियाँ अब भी मौजूद होंगी ।

पाटन और अहमदाबादके उपाश्रयोंमें अब भी पंचाख्यानकी बहुत सी प्रतियाँ मौजूद हैं, परन्तु इसको जैनसाहित्यका

दुर्भाग्य समझना चाहिए कि मुझे इन प्रतियोंके देखनेकी आज्ञा न मिली । मैं दावेके साथ कह सकता हूँ कि पंचतंत्रकी भिन्न भिन्न आवृत्तियाँ इतनी किसीने भी नहीं देखीं जितनी मैंने देखी हैं । यदि पाटन और अहमदाबाद इत्यादिकी प्रतियाँ मेरे पास परीक्षाके लिए भेज दी जायँ, तो मैं थोड़े ही समयमें इस प्रसिद्ध ग्रंथके इतिहासमें इन प्रतियोंकी उपयोगिताको दिखानेके योग्य हो जाऊँगा । सार्वजनिक संस्थाओं और भारतीय तथा यूरोपीय विद्वानोंद्वारा मिली हुई अनेक प्रतियोंका जो उपयोग मैंने किया है वह सिद्ध करता है कि मैं ऐसी सहायताका पात्र हूँ और मेरी खोजोंसे जैनसाहित्यकी ख्यातिमें बहुत वृद्धि हुई है ।

' सरलावृत्ति ' ने बड़ी भारी सफलता प्राप्त की । इसके बाद पंचतंत्रके जितने रूपान्तर हुए—चाहे वे जैनोंने अथवा हिन्दुओंने, साधुओंने अथवा श्रावकोंने लिखे हों और चाहे गुजरातमें, महाराष्ट्रमें, दक्षिणमें, ब्रह्मामें अथवा नैपालमें लिखे गये हों—वे सब या तो सरलावृत्तिके आधार पर ही लिखे गये या उनके लिखनेमें इस आवृत्तिसे बहुत सहायता ली गई ।

समय-क्रमसे सरलावृत्तिके पश्चात् जैन-मुनि पूर्णभद्र सूरिकी आवृत्तिका नम्बर है । उन्होंने अपना ग्रंथ सन् ११९९ ई० अर्थात् संवत् १२९९ में लिखा था । उन्होंने

अपनी प्रशस्तिमें लिखा है कि एक राज-मंत्री-ने उनको प्राचीन शास्त्र पंचतंत्रकी, जो 'विशीर्ण कर्ण' हो गया था, संशोधित आवृत्ति तैयार करनेकी आज्ञा दी। वे आगे चलकर लिखते हैं कि उन्होंने यह काम बड़ी सावधानीके साथ किया और ग्रंथका केवल संशोधन ही न किया, किन्तु उसमें नई बातें भी बढ़ाईं। उनके ग्रंथकी ध्यान-पूर्वक देख-भाल करनेसे और ग्रंथोंका मिलान करनेसे मालूम होता है कि उनका कथन सर्वथा ठीक है। पूर्णभद्रने मुख्यतः सरल-वृत्तिको तंत्राख्यायिकाके साथ मिला दिया, परन्तु उन्होंने इनसे प्राचीन ग्रंथोंकी भी देख-भाल अवश्य की होगी, क्योंकि उनके ग्रंथका पाठ कई स्थानोंमें केवल पहलवी अनुवाद अथवा सोमदेवकृत संक्षिप्त आवृत्ति अथवा क्षेमेन्द्रकी आवृत्तिसे ही मिलता है। इसके सिवाय उन्होंने सोलह कथायें अपनी ओर से बढ़ा दीं। चूँकि मुझे कई अति प्राचीन और अलभ्य हस्तलिखित प्रतियोंके देख-नेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था, इस लिए मैं अपने पंचतंत्रमें ऐसा पाठ देनेको समर्थ हुआ हूँ जो स्वयं ग्रंथकर्ताके लिखे हुए पाठसे बहुत ही मिलता जुलता है। मेरे इस ग्रंथका अंगरेजी अनुवाद पाल एलमर मोरने किया है और वह हारवर्ड ओरिएण्टल सीरीजमें प्रकाशित होगा।

पंचाख्यानकी बहुतसी हस्तलिखित प्रतियाँ जो उत्तर-पश्चिम भारतवर्षमें प्रचलित हैं सरलवृत्ति और पूर्णभद्रके पाठोंके अंशोंको मि-

लाकर निर्माण की गई हैं। उनमेंसे कुछ मनोरंजक हैं क्योंकि उनमें नई कथायें भी लिखी गई हैं। इन मिश्रित आवृत्तियोंमेंसे एक आवृत्तिके कुछ अंशका अनुवाद यूनानी भाषामें एक यूनानी व्यापारी डैमैट्रीओस गेलेनोस द्वारा हो चुका है। यह व्यापारी सन् १७८६ ई० में कलकत्ता गया था और वहाँपर ब्राह्मणोंके साथ रहकर उनके दर्शन-शास्त्र और साहित्यका अध्ययन करता रहा और उसने अपनी मृत्यु तक, जो सन् १८८३ ई० में हुई, कई संस्कृत ग्रंथोंका अनुवाद अपनी मातृभाषामें किया।

बैनफेका जर्मन अनुवाद (१८९८ ई०), ई. लासेरौका फ्रेञ्च अनुवाद (१८७१ ई०), आई पिज्जीका इटालियन अनुवाद (१८९६ ई०), और एच. रसमुसेनका डेनिश अनुवाद (१८९३ ई०) ये सब कोजगार्टनके भ्रष्ट पाठसे किये गये हैं, और शिमिटका जर्मन अनुवाद (१९०१ ई०) पूर्णभद्रकी आवृत्तिके दो रूपान्तरोंके आधार पर हुआ है।

मैं यहाँपर अत्यन्त प्राचीन जैन आवृत्तियोंके संस्कृत रूपान्तरों और उनसे मिल कर बनी हुई मिश्रित आवृत्तियोंके विषयमें कुछ कहना नहीं चाहता। इन रूपान्तरोंमें कई संक्षिप्त आवृत्तियाँ हैं और एक ऐसा संग्रह भी है जिसमें मूल (व्यापक) कथाको निकाल कर केवल वे ही कथायें फुटकर रूपमें लिखी हुई हैं, जो मूल कथाके अंतर्गत हैं।

जैनग्रंथावली, पृष्ठ २२९, नं. ७९ के अनुसार पंचाख्यान-सारांशद्वारा नामक एक

ग्रंथ है, जिसमें ३७०० श्लोक हैं। यदि कोई महाशय मुझे इस ग्रंथका कुछ हाल लिख भेजे अथवा इसकी एक प्रति मेरे पास देखनेके लिए भेज दे, तो मैं उनका बड़ा आभार मानूँगा।

परन्तु जैनोंने केवल संस्कृतमें ही पंचाख्यानकी आवृत्तियाँ नहीं लिखीं—जिन्हें केवल 'शिष्ट' (विद्वान्) ही समझ सकते हैं—किन्तु उन्होंने इस ग्रंथका प्रचार सर्वसाधारण जनतामें भी उनकी मातृभाषा द्वारा किया। पूनाकी डैकन-कालिज-लाइब्रेरीके और कलकत्ताकी संस्कृत-कालिज-लाइब्रेरीके बहुमूल्य हस्तलिखित ग्रंथोंके संग्रहोंमें कई आवृत्तियाँ 'देशीभाषाओं' में हैं। ये सब आवृत्तियाँ और इन्हींके साथ इन पुस्तकालयोंकी पंचाख्यान और पंचतंत्रकी अन्य सभी हस्तलिखित प्रतियाँ मेरे पास परीक्षाके लिए आगई थीं। इस परीक्षाके परिणाम ये हैं:—

डैकन कालिजके सन् १८८९ ई० के ७४१ नं० के ग्रंथमें कथाओंका एक संग्रह है, जिसका नाम पंचाख्यानवार्तिक, अर्थात् पंचाख्यानकी टीका अथवा अनुवाद है। यह ग्रंथ बड़े महत्त्वका है, क्योंकि इसमें २२ नई कथायें हैं, जिनमेंसे कुछ कथायें पंचतंत्रकी एक मराठी आवृत्तिमें, दक्षिण-भारतकी एक आवृत्तिमें और एक नैपाली आवृत्तिमें भी मिलती हैं। इसका कर्ता अवश्य एक जैनश्रावक होगा, जो गुजरातमें मारवाड़की सीमा पर रहता होगा।

क्योंकि इस ग्रंथकी भाषा प्राचीन गुजराती है जिसमें यत्र तत्र मारवाड़ी शब्दोंके रूप भी मिलते हैं। उसने मूलकथाको छोड़कर अंतर्गत कथाओंको एक एक करके लिख दिया है। प्रत्येक कथाके शीर्षक पर संस्कृतका एक कथा-श्लोक है। चूँकि इनमेंसे बहुतसे श्लोक अशुद्ध हैं और उनका अर्थ भी उनके नीचे दी हुई कथाओंके उपयुक्त नहीं है, इससे जान पड़ता है कि ग्रंथकर्ता विद्वान् न था। इस लिए उसने वे कथायें भी (जिनकी संख्या २७ है) दे दी हैं, जो सरलावृत्ति अथवा पूर्णभद्रकी आवृत्तिमें हैं। हाँ, इनमेंसे अधिकांश कथाओंका रूप बदल दिया गया है और निस्संदेह इसी रूपमें वे उस समय उत्तर गुजरातकी जनतामें जनश्रुतियोंके आधार पर प्रचलित होंगी,—और निस्संदेह यह एक ऐसी बात है, जिससे इस ग्रंथका मूल्य बहुत बढ़ गया है।

डैकन-कालिज-लाइब्रेरीके दो और हस्तलिखित ग्रंथोंमें, जिनका नं० ४२४ (सन् १८७९-८० ई०) और २८९ (सन् १८८२-३ई०) है एक जैन विद्वान् यशोधरकृत पंचाख्यान है। कर्ता का नाम सूचीपत्रमें यशोधर लिखा है, जो अशुद्ध है। यह ग्रंथ सरलावृत्ति और पूर्णभद्रकी आवृत्तिकामिश्रित अनुवाद है। अनुवादकी भाषा प्राचीन गुजराती है। यह अनुवाद गद्यमें है और इसकी लेखन-शैली पंचाख्यान वार्तिककी शैलीसे बहुत अच्छी है। कई स्थानों पर

यशोधरने प्राचीन काश्मीरी आवृत्ति अर्थात् तंत्राख्यायिकोस भी काम लिया है।

डैकन-कालिजके दो हस्तलिखित ग्रंथोंमें (नं० ३१, सन् १८९८-९ और नं० २८८ सन् १८८२-३), कलकत्ताकी लाइब्रेरीके एक हस्तलिखित ग्रंथमें, और एक और हस्तलिखित ग्रंथमें, जो मुझे मेरे एक जैनधर्मानुयायी मित्रने दिया था, प्राचीन गुजराती भाषामें लिखी हुई पंचतंत्रकी तीसरी आवृत्ति मिलती है। इस आवृत्तिके कर्ता गुणमेरुके शिष्य जैनमुनि रत्नसुन्दर हैं। यह ग्रंथ चौपाइयों और दोहोंमें लिखा है और इसका नाम कथा-कल्लोल है। रत्नसुन्दर, जिनका नाम केवल कलकत्ताके ग्रंथमें दिया है, पूर्णिमा-पक्ष गच्छके थे और उन्होंने अपना ग्रंथ संवत् १६२२ में अहमदाबादके पश्चिममें सानन्द ग्राममें लिखा था। उन्होंने लिखा है कि मैंने यह ग्रंथ 'गुरुके प्रसादसे' लिखा है।

इन ग्रंथोंके आधारपर हम अब यह मनोज्ञ बात कह सकते हैं कि जैनसाधुओंमें एक समुदाय ऐसे कवियोंका हो गया है जिन्होंने अपनी देशी भाषाओंमें कविता की है। कलकत्तेके ग्रंथमें संशोधित और संवर्धित पाठ है; कदाचित् यह रत्नसुन्दरके किसी शिष्यका लिखा हुआ है। इस ग्रंथकी प्रशस्तिमें रत्नसुन्दरकी बहुत प्रशंसा की गई है, परन्तु दूसरे ग्रंथोंके पाठमें इतनी नम्रता प्रकट की गई है कि उनमें

कर्ताका नाम तक नहीं दिया, किन्तु कर्ताके नामके स्थानमें केवल 'श्रीगुणमेरूसूरि-शिष्य' लिखा है।

रत्नसुन्दरने मुख्यतः सरलावृत्तिके आधार पर अपना ग्रंथ लिखा है और उसमें दो कथायें और बढ़ाई हैं, जो बच्छराज और मेघविजयकी आवृत्तियोंमें भी मिलती हैं। कलकत्तेकी विस्तृत आवृत्तिमें तीन कथायें और दी हैं, जो अन्य जैनग्रंथोंमें भी मिलनेके कारण प्रसिद्ध हैं। ये कथायें इस ग्रंथके कथामुख अर्थात् प्रस्तावनामें लिखी हैं।

उपर्युक्त कवियोंके समान देशी भाषाके कवियोंका एक समुदाय और भी था। बच्छराज, जिन्होंने अपना पंचाख्यान-चौपई संवत् १६४८ (अर्थात् सन् १५९१-९२) में लिखा था, इसी समुदायमें थे। वे तपगच्छके थे और रत्नचन्द्रके शिष्य थे, जिनके संबंधमें बच्छराजने लिखा है कि वे पवित्र और सुन्दर भजनोंका प्रचार कर रहे थे।

बच्छराजने अपना ग्रंथ रत्नसुन्दरके ग्रंथके आधार पर लिखा है; क्योंकि उनका ग्रंथ रत्नसुन्दरके ग्रंथसे बहुतसे अंशोंमें और छंदोंके अन्त्यानुप्रासोंमें मिलता है; परन्तु उनके ग्रंथमें रत्नसुन्दरके ग्रंथसे १६ कथायें अधिक हैं।

बच्छराजके ग्रंथका उचित सत्कार हुआ। किसी कविने, जिसके नामका पता नहीं है, उसका अनुवाद संस्कृत-पद्यमें किया। दुर्भाग्यवश मुझे यह अनुवाद नहीं मिल सका

है, परन्तु उसका कुछ अंश एक और संस्कृत जैनग्रंथ, अर्थात् मेघविजयकृत पंचाख्यानमें मिला है । मेघविजय तपगच्छके थे और उन्होंने अपना ग्रंथ संवत् १७१६ (अर्थात् १६९९-६० ई०) में नवरंग-नगरके बालकोंको उपदेश देनेके लिए लिखा था । उनके ग्रंथमें सब कथायें वे ही हैं जो बच्छराजके ग्रंथमें मिलती हैं । केवल अंतर यह है कि मेघविजयने अपने ग्रंथके अंतमें रत्नपालकी कथा बढ़ा दी है । इस कथाके अन्य रूपान्तर सोमनन्दनकृत रत्नपालकथामें, जो लगभग संवत् १९०३ में लिखी गई थी, और धर्म-कल्पद्रुम (द्वितीय सर्ग, ४ थे और ९ वें श्लोक) में भी मिलते हैं । मेघविजयने इस कथाको संस्कृत छंदोबद्ध अनुवादसे लिया अथवा उसको स्वयं लिखा, इस बातका पता उस समय तक नहीं लग सकता जब तक कि कहीं वह आवृत्ति न मिल जाय ।

पंचाख्यानकी एक और जैन आवृत्ति है, जो निर्मल श्रावककी लिखी हुई है । इस आवृत्तिकी एक प्रति मुझे मेरे एक जैन-धर्मानुयायी मित्रने भेजी है । उसमें केवल प्रथम तंत्रका अधिकांश है; परन्तु यह अंश भी पाँच तंत्रोंमें विभाजित है । इस ग्रंथकी भाषा गुजराती नहीं किन्तु व्रजभाषा है और संपूर्ण ग्रंथ छंदोबद्ध है । परन्तु चूँकि इस ग्रंथमें कई जगह गुजराती मुहाविरों और क्रियाओंका गुजराती रूप आया है, इस लिए यह स्पष्ट है कि इसका कर्ता गुजराती था ।

पंचाख्यानका एक अनुवाद और भी है जो नवीन गुजरातीमें है और जिसके कर्ता के नामका पता नहीं है । इसके तीन पाठ मिलते हैं, जिनमेंसे दो लीथो (पत्थरके छापे) के छपे हुए हैं और एक टाइपसे छपा हुआ है । ये क्रमसे १८३२-३, १८४० और १८८२ के छपे हुए हैं । इस बातका कोई प्रमाण नहीं है कि इस अनुवादका कर्ता जैनधर्मानुयायी था; परन्तु उसने जिस पाठका अनुवाद किया है वह जैन आवृत्तिके दोनों अत्यन्त प्राचीन संस्कृत पाठोंका मिश्रण है ।

अब गुजरातसे महाराष्ट्रकी ओर अपनी दृष्टि फेरिए । महाराष्ट्रमें पंचाख्यानके संस्कृत और मराठीके कई रूपान्तर मिलते हैं । ये सब या तो पंचाख्यानकी दोनों अत्यन्त प्राचीन जैन आवृत्तियोंके आधार पर लिखे गये हैं अथवा उनके शब्दशः अनुवाद हैं ।

इन रूपान्तरोंमें अनन्त नामक किसी वैष्णव ब्राह्मणका एक संस्कृत रूपान्तर है । कर्ताने प्रस्तावनाके श्लोकोंमें अपने आपको नागदेव भट्टका शिष्य बतलाया है । नागदेव भट्ट कण्वके वेदानुयायी संप्रदायके थे ।

अनन्तने अपने ग्रंथका नाम कथामृत-निधि अर्थात् कथारूपी अमृतका समुद्र रक्खा है, परन्तु यह ग्रंथ असलमें सरलावृत्तिका एक बहुत संक्षिप्त और निकम्मा रूपान्तर है । कर्ताने जहाँ कहीं मूल ग्रंथके आशयको

बदला है वहीं अपनी निकम्मी रुचिका परिचय दिया है। यह ग्रंथ मूल जैनग्रंथसे बहुत निम्न श्रेणीका है।

एक और संस्कृत रूपान्तर है, जिसके कर्ता रामचन्द्र वैष्णव हैं। यह ग्रंथ अपूर्ण है। इसकी प्रशास्ति रामचन्द्रके पुत्र वसुदेवने संवत् १८३० अर्थात् शक १६९९ में लिखी थी। यह ग्रंथ सरलावृत्तिके पहले और पाँचवें तंत्रोंको और दक्षिणी पंचतंत्रके—जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है—चौथे और पाँचवें तंत्रोंको मिला कर लिखा गया है।

प्राचीन मराठी भाषाके रूपान्तरोंमें एक रूपान्तर है जिसके कर्ताके नामका पता नहीं है। इस रूपान्तरकी दो आवृत्तियाँ मिलती हैं। इन दोनोंमें संस्कृतके श्लोक हैं जिनमेंसे कुछ मराठी अनुवादसहित हैं और कुछ बिना अनुवादके हैं। यह ग्रंथ दोनों * अत्यन्त प्राचीन जैन रूपान्तरोंका मिश्रित अनुवाद है। इस ग्रंथकी एक आवृत्तिको शक १८२९ में विनायक लक्ष्मणने इन्दुप्रकाश प्रेस बम्बई द्वारा मुद्रित महाराष्ट्र-कवि-सीरीजके ३९ वें अंकसे लेकर ४९ वें अंक तक प्रकाशित किया था।

एक भागवतने, जिनका नाम निर्मल पाठक था, प्राचीन मराठी भाषामें एक छंदोबद्ध आवृत्ति लिखी थी। इस आवृत्तिकी केवल एक प्रति, जो मैंने देखी है, लंदनकी इंडिया आफिस लाइब्रेरीमें है। यह स्पष्ट है कि

* अर्थात् सरलावृत्ति और पूर्णभद्रकी आवृत्ति।

निर्मल पाठकको संस्कृतका बोध बहुत थोड़ा था। इसी लिए उन्होंने पंचाख्यानकी कथाओंको उस रूपमें दिया है जिस रूपमें वे जनतामें प्रचलित थीं, और जैन आवृत्तियोंमें जो रूप दिये हैं उनको छोड़ दिया है। तथापि उन्होंने जैन आवृत्तियोंके आधार पर अपना ग्रंथ लिखा है और संभव है कि उन्होंने पंचाख्यानकी सर्व साधारणमें प्रचलित जैनकथाओं जैसे उपर्युक्त पंचाख्यान वार्तिकसे भी सहायता ली हो; क्योंकि उनकी कई कथायें जो पंचाख्यानके प्राचीन संस्कृत रूपान्तरमें नहीं मिलती हैं, पंचाख्यान वार्तिककी कथाओंसे मिलती जुलती हैं।

यही बात निम्न लिखित आवृत्तियोंके विषयमें, जो दक्षिणभारत, नेपाल और ब्रह्मा-आदिमें मिलती हैं, सत्य है।

उत्तर-पश्चिम-भारतीय संक्षिप्त आवृत्तिको जो संभवतः एक वैष्णवकी कृति है, जैन-पंचाख्यानके भिन्न भिन्न रूपान्तरोंने उत्तर-पश्चिमसे बहिष्कृत कर दिया। परन्तु इसकी एक प्रति, जिसमें बहुतसी अशुद्धियाँ थीं और कई स्थानोंपर पाठ छूटा हुआ था, दक्षिण भारतमें आई और यहाँपर उसकी बहुतसी प्रतियाँ और अनुवाद हुए जो अब भी मिलते हैं। ये अनुवाद तैलंग, कन्नड, तामिल, मलयालम और मोड़ी (?) भाषाओंमें हैं; और इनमें भी कुछ गद्यमय हैं और कुछ छंदोबद्ध हैं। अभी तक इन अनुवादोंका बहुत कम हाल मालूम हुआ है। परन्तु उनमेंसे कुछ तो दक्षिण

पंचतंत्रके संस्कृत पाठके आधारपर लिखे गये हैं और कुछ इस संस्कृत और पंचतंत्रके अन्य पाठोंके मिश्रित अनुवाद हैं ।

इनमेंसे एक आवृत्तिकी संस्कृत बहुत निकम्मी है । यह आवृत्ति दक्षिणी पंचतंत्र और तामिलके एक अथवा कई पाठोंके मेलसे लिखी गई है । इस आवृत्तिका पता मुझे ताड़-पत्र पर लिखी हुई एक विचित्र प्रतिसे लगा है, जिसे तंजौर निवासी टी. एस. कुप्पस्वामी शास्त्रीने स्वर्गीय अध्यापक वोन मन कौसकाको प्रदान किया था और जो अब लैपजिगकी यूनीवर्सिटी-लाइब्रेरीमें संग्रहीत है । इस वृत्तिमें कई नई कथायें हैं, जिनमेंसे कुछ पंचारख्यानकी भिन्न भिन्न जैन-आवृत्तियोंमें मिलती हैं ।

अब्वे डचूबोइस कृत फ्रेञ्च भाषाका पंच-तंत्र, जो तैलंग, तामिल और कन्नड भाषाओंकी तीन प्रतियोंसे मिला कर तैयार किया गया है, इस संस्कृत आवृत्तिसे बहुत कुछ समानता रखता है । क्योंकि कई विशेष कथायें इन दोनों ही ग्रंथोंमें मिलती हैं ।

उन्नीसवीं शताब्दीमें तंदवरय मुदालियरने मराठी अनुवादसे एक अनुवाद तामिल भाषामें तैयार किया । यह मराठी अनुवाद लीथोमें बिना मुखपृष्ठके छपा था और दक्षिणी पंचतंत्र, हितोपदेश और दोनों अत्यन्त प्राचीन जैन आवृत्तियों, अर्थात् सरलवृत्ति और पूर्णाभद्रकी आवृत्तिके मेलसे तैयार किया गया था । तंदवरय मुदालियर-

का तामिल ग्रंथ इसी मराठी ग्रंथका शब्दशः अनुवाद है । तंदवरयका ग्रंथ दक्षिण भारतके स्कूलोंका सर्वप्रिय ग्रंथ है और इसका अनुवाद अंगरेजीमें हो चुका है ।

मेरे पास एक हस्तलिखित ग्रंथकी एक प्रति और भी है । इस प्रतिके स्वामी काशी-निवासी एक ब्राह्मण हैं । इस प्रतिकी मूल प्रति तैलंग लिपिमें हैं, अतएव यह ग्रंथ कर्नाटक देशमें लिखा गया होगा । यह ग्रंथ धर्म पंडितकी रचना है और अपूर्ण है । यह ग्रंथ संपूर्ण अंशमें नहीं परन्तु मुख्यतः दोनों अत्यन्त प्राचीन जैन आवृत्तियोंके आधार पर लिखा गया है ।

एक ग्रंथ और है, जिसका नाम तंत्रारख्यान है, (तंत्रारख्यायिका नहीं) । इस ग्रंथके तीन रूपान्तर आजकल नैपालमें मिलते हैं । इनमेंसे एकमें जो सबसे प्राचीन और मूल है केवल कथाकल्लोल है; दूसरेमें उसके सिवाय कुछ कथायें नेवारी (नैपाली ?) में हैं । मालूम होता है कि इनमेंसे पहला रूपान्तर दक्षिणसे नैपालमें लाया गया है । चूंकि इसमें एक स्थान पर तारागणोंको देवता माना गया है, इस लिए यह निश्चय है कि इसका कर्ता जैनधर्मानुयायी था ।

ब्रह्मा इत्यादि पूर्वी देशोंमें—दक्षिणी पंचतंत्रके तामिल रूपान्तरके अनुवादके अतिरिक्त—कई ग्रंथ ऐसे हैं, जो पंचतंत्रके आशयको लेकर लिखे गये हैं । यद्यपि इन ग्रंथोंके विषयमें बहुत कम मालूम है, परन्तु

वे प्राचीन जैन आवृत्तियोंके प्रभावके सूचक हैं ।

जो कुछ इस निबंधमें कहा गया है वह बहुत ही संक्षेपमें है । इस विषयका संपूर्ण विवरण मेरी पुस्तकमें मिलेगा, जिसका नाम 'पंचतंत्र, उसका इतिहास और उसका भौगोलिक विभाग' है । यह पुस्तक प्रेसमें दी जा चुकी है । यदि इस पुस्तकके विषयके संबंधमें जो कुछ इस लेखमें लिखा जा चुका है उससे भी अधिक जानना हो, तो मेरे तंत्राख्यायिका नामक ग्रंथकी प्रस्तावना देखनी चाहिए । इस ग्रंथका संपादन मैंने किया है और यह लेपजिगमें हारवर्ड ओरियण्टल सीरीजके लिए छप रहा है ।

यद्यपि यह निबन्ध बहुत ही संक्षिप्त है, तथापि इसके द्वारा पाठकोंको यह मालूम हो जायगा कि जैनकथासाहित्यका समस्त भारतवर्ष पर कितना प्रभाव था । पहले इस बातका मालूम होना असंभव था, क्योंकि जैनग्रंथभंडारों तक यूरोपीय विद्वानोंकी पहुँच न थी । परन्तु सौभाग्यकी बात है कि आज कलके जैनी उस लाभको समझने लगे हैं जो उन्हें अपने सरस्वतीभंडारों द्वारा पश्चिमी और पूर्वी विद्वानोंकी सहायता करनेसे होता है । यदि जैनी इस काममें अधिक उदारता दिखलाते चले जायँ, तो हम आशा कर सकते हैं कि हमें जैनसाहित्यके इतिहासके दर्शन होंगे । ऐसा इतिहास केवल जैनोंके ही लिए नहीं, किन्तु

समस्त भारतवर्षके लिए, बल्कि यों कहिए कि एशिया और यूरोपके लिए अतीव महत्त्वका होगा । मैंने अपनी पंचतंत्र विषयक उपर्युक्त पुस्तकमें यह भी दिखाया है कि तृतीनामा, जिसका अनुवाद एशिया और यूरोपकी भिन्न भिन्न भाषाओंमें हो चुका है, शुकसप्तति (शुकबहत्तरी) नामक जैनग्रंथका ही अनुवाद है । संसारमें भ्रमण करनेवाले जितने समूचे जैनग्रंथोंका अब तक पता लगा है उनमें यही ग्रंथ सबसे प्राचीन है । जैन विद्वानोंने समय समय पर अब तक मुझे जैसी सहायता दी है यदि ऐसी ही सहायता वे मुझे भविष्यमें भी देते रहें, तो मुझे आशा है कि कथासाहित्यके क्षेत्रमें जैनसाहित्यका उच्च महत्त्व निपट अंशोंपर भी प्रकट हो जायगा । *

विधिका प्राबल्य और दौर्बल्य ।

ले०-बाबू जुगलकिशोरजी, मुस्तार ।

जीवनकी औ धनकी,
आशा जिनके सदा लगी रहती ।
विधिका विधान सारा,
उनहीके अर्थ होता है ॥ १ ॥
विधि क्या कर सकता है ?
उनका, जिनके निराशता आशा ।
भय-काम वश न होकर,
जगमें स्वाधीन रहते जो ॥ २ ॥

* यह जर्मनीके सुप्रसिद्ध डाक्टर जुहानीज हर्टलके एक लेखका अनुवाद है । पाठकोंको इस लेखके पढ़नेसे यह भी मालूम होगा कि स्वाध्याय किसे कहते हैं ।—अनुवादक ।

काश्मीरका इतिहास ।

(ले०-श्रीयुत बाबू सुपार्श्वदास गुप्त बी. ए. ।)

कई ऐतिहासिकोंने विशेष कर असंस्कृतज्ञ यूरोपियनोंने भारतवर्षके साहित्य पर यह निन्दनीय आक्षेप किया है कि इसके भक्तोंने इसके ऐतिहासिक अंग पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया और उन्हें साहित्य लिखनेका ढंग मालूम न था; परन्तु उनकी यह सम्मति इतिहासकी भिन्न भिन्न समयोंमें, भिन्न भिन्न परिभाषा होनेके कारण मान्य नहीं हो सकती। जिस प्रकार आधुनिक समयमें यूरोपवाले इतिहास लिखते हैं हमारे पूर्वज उस तरह नहीं लिखा करते थे। जिन अठारह पुराणोंको लोग झूठे किस्से कहानियोंका भाण्डार कह कर तिरस्कृत करते हैं उन्हींका यदि ऐतिहासिक दृष्टिसे अध्ययन किया जाय और परम्परागत मिथ्या कथन जो लेखकोंकी अज्ञानतासे उनमें घुस गये हैं उनसे निकाल दिये जाँय तो प्राचीन भारतवर्षके इतिहासके लिए बहुतसा सामान मिल सकता है। हर्षकी बात है कि भारतीय विद्वानोंका ध्यान इस ओर गया है और उनके अनुसंधानोंसे भारतके माथे पर अकारण लगे हुए कलंकके मिट जानेकी बहुत कुछ आशा है।

इतना ही नहीं बल्कि, हमारे पूर्वज इतिहासके बड़े प्रेमी थे और इतिहासकी प्रासिद्ध शक्तिसे शून्यताके साथ सामयिक और विगत

घटनाओंका हाल लिपिबद्ध करते थे। जिन लोगोंने महाकवि कल्हणकी राजतरंगिणी देखी है उन्हें मालूम होगा कि, उसने प्रथम अध्यायमें किस प्रकार इतिहासलेखकोंकी प्रशंसा करते हुए कई पुराने इतिहासवेत्ताओं और लेखकोंका हवाला दिया है और स्थान स्थानपर उनके ग्रन्थोंकी समालोचना की है। कल्हणने वहाँ पर जो कुछ लिखा है उसका भावार्थ यह है:—“ सच्चे कवियों (इतिहासवेत्ताओं) की वह शक्ति प्रशंसा करने योग्य है जो अमृतकी धारासे भी बढ़कर है; क्यों कि इसीके कारण उन कवियों और अन्य लोगोंका शरीर अमर हो जाता है। प्रजापतिका मुकाबला करनेवाले और सुन्दर ग्रन्थ लिखनेवाले कवियोंके सिवा और कौन ऐसा है जो साधारणकी आँखोंके सामने भूतकालकी घटनाओंका चित्र खींच सकता है? वही उच्च विचारवाला कवि प्रशंसनीय है जिसके शब्द न्यायाधीशोंके शब्दोंकी तरह पूर्वकालिक बातोंके वर्णनमें प्रेम और वृणा दोनोंसे अलग रहते हैं। प्राचीन राजाओंके इतिहासविषयक पुराने बड़े बड़े ग्रन्थ खण्डरूपमें रह गये हैं; क्योंकि सुव्रतने उसे अपनी छोटीसी पुस्तकमें इस प्रकार ढूँस दिया है कि उसका आशय आसानीसे याद रह सके। यद्यपि उसकी

पुस्तकका नाम बहुत निकल गया है तो भी यह कहना पड़ता है कि विषयके प्रतिपादनमें उसने अपनी बुद्धिसे काम नहीं लिया है। असावधानीके कारण क्षेमेन्द्रकी नृपावलीका एक भाग भी अशुद्धियोंसे रहित नहीं है। मैंने पुराने पंडितोंके इतिहासविषयक ग्यारह ग्रन्थ और नील ऋषिकी सम्मतिथी उनके नीलमत-पुराणमें देखी हैं। प्राचीन प्रशंसाविषयक तथा पुराने राजाओंके दानपत्रों और मन्दिरस्थापनसम्बन्धी लेखों और ग्रन्थोंको देखनेसे बहुतसी अशुद्धियाँ हल हो गई हैं।” *

कल्हणके इस कथनसे उसकी ऐतिहासिक निष्पक्षता, समालोचकप्रवृत्ति और उसके पहले इतिहासवेत्ताओं और लेखकोंके अस्तित्वका पूरा पता चलता है। यद्यपि उनमेंसे किसीका लिखा हुआ कोई ग्रन्थ अभीतक उपलब्ध नहीं हुआ है, फिर भी यूरोपीय विद्वानोंको मुँहतोड़ जवाब देनेके लिए इतना भी काफी है। फिर मुसलमानोंके नष्ट किये हुए हिन्दूग्रन्थसमूहका परिमाण देखते हुए क्या यह निस्सन्देह रूपसे हम नहीं कह सकते कि हमारे इतिहासग्रन्थ भी समुद्रतलकी शोभा बढ़ा रहे हैं ! यह स्मरण रखना चाहिए कि किसी जातिकी कीर्ति और मर्यादाको नष्ट करनेका सबसे अच्छा और प्रभावोत्पादक उपाय उसके इतिहासको तथा शिल्प-

* Dr. Stein's translation of Rajtarangini.

कलासम्बन्धी ग्रन्थोंको जल अथवा अग्नि-को समर्पण करना है। इसी दृष्टिसे मुसलमानोंने हमारे इस प्रकारके ग्रन्थ नष्ट कर दिये जिनका परिणाम यह हुआ कि, हम कलाकौशलविहीन और अपने पूर्वजोंके इतिहाससे रहित हो गये; पर हमारा सौभाग्य है कि राजतरंगिणी पर ऐसी आफत न आई और हमें इतना लिखनेका मौका मिला और साहस हुआ। इस सबन्धमें यह भी कह देना अनुचित न होगा कि पुराने पुस्तकभंडारोंका अनुसन्धान करनेसे कौटिल्यके अर्थशास्त्रकी तरह किसी अद्वितीय इतिहास ग्रन्थके भी निकल आनेकी संभावना है। अनुसन्धानकर्ताओंको ध्यान रखना चाहिए कि हजारों जैनपुस्तकभण्डार जिनमें अधिकतर कर्नाटक और राजपूतानेमें मुनियोंके अधिकार और मन्दिरोंमें हैं अभीतक ज्योंके त्यों पड़े हैं। सम्भवतः सालमें एक बार वे ग्रन्थ धूपमें रखे जानेके लिए निकाले जाते हैं और फिर नये बेटनके अन्दर अपने पुराने स्थानपर रख दिये जाते हैं। सम्भव है कि खोज करने पर इनमेंसे राजतरंगिणीकी तरह जिसका तिसरा भाग सन् १४१७ से १४८६ तककी राजनीतिक घटनाओंका वर्णन करता है और जैनधर्मावलम्बी श्रीवरका बनाया हुआ है, दो एक अमूल्य इतिहासग्रन्थ निकल आवें। जिस राजतरंगिणीने इतिहासज्ञोंकी सभामें भारतका सिर नीच होने न दिया उसीके आधारपर मैं इस लेखमें काश्मीरके राजाओंका संक्षिप्त हाल लिखता हूँ—

काश्मीरका इतिहास छः कालोंमें विभक्त किया जा सकता है—(१) हिन्दू-काल, (२) मुसलमान-काल, (३) मुगल-काल, (४) पठान-काल, (५) सिक्ख काल, और (६) आधुनिक डोगरा काल ।

कहा जाता है कि, आजकलकी काश्मीर वैली किसी जमानेमें एक बड़ी झील थी, जो समय पाकर श्रीनगरसे ३४ मील उत्तर पश्चिम बारामूला नामक कस्बेके पास आ निकली और झेलम नदीका आविर्भाव हुआ। कुछ दिनोंके बाद झीलसे पानीके निकलते रहनेसे इधर उधर जमीन निकल आई जो बढ़ती बढ़ती आधुनिक काश्मीरमें परिणत हो गई। यह किम्बदन्ती ही नहीं है बल्कि इसके चारों ओरके पहाड़ोंके देखने और वैज्ञानिकोंके अनुसंधानोंसे मालूम होता है कि काश्मीर किसी जमानेमें झील था। बर्फसे ढके हुए पहाड़ोंपर गौर करनेसे और गर्मीमें इनसे पैदा हुए अथाह पानीके इकट्ठा होनेके स्थानकी सम्भवता पर दृष्टि डालनेसे यह कहना पड़ता है कि काश्मीर वास्तवमें एक समय झील था जिसके चारों किनारोंपर छोटी वस्तियाँ थीं। पुरानी इमारतोंके खण्डरात अभीतक अधिकतर पहाड़ोंकी तराइयोंमें ही पाये जाते हैं, जो एक समय झीलके किनारे थे।

अवन्तिपुरके मन्दिर और मार्तण्डके पाण्ड-वस्थान और अन्य इमारतें पर्वतकी तराइयोंमें ही हैं। पहाड़ोंकी चोटियोंपर कई तह नीचे अभीतक मछलियोंके अंश पाये जाते हैं।

आज काश्मीरमें जिस जलराशिको 'डल' झील कहते हैं, वह पहले बहुत बड़ी थी। प्राचीन समयकी बात जाने दीजिए; डोगरा-वंशके प्रथम राजा महाराजा गुलाबसिंहके समयमें ही 'डल गेट' बना था, जिससे उसका अधिकांश पानी इस फाटकसे निकलकर झेलममें जा गिरा और डलके इर्दगिर्द फलोंके वर्तमान बागीचोंकी सृष्टि हुई। नीलमत-पुराणमें लिखा है कि प्राचीन समयमें इस झीलमें पार्वती देवी अपनी विहार-नौकामें घूमा करती थीं और उन्हींके कारण उसका नाम 'सतीसर' पड़ गया था। उसमें जलोद्भव नामक एक हिंसक दानव भी रहता था, जिसने किनारेकी वस्तियाँ विध्वंस कर दी थीं। एक बार पर्यटन करते करते ब्रह्माके पौत्र कश्यप वहाँ आये और मनुष्योंका आर्तनाद सुन बड़े दुखी हुए। उन्होंने उस दानवको मारनेके लिए एक हजार वर्षतक तपस्या की; फिर भी वह दानव उनके हाथ न लगा और पानीके अन्दर जा छिपा। अन्तमें विष्णुने अपने त्रिशूलसे बारामूलाके पासका पहाड़ी किनारा काट डाला और झीलका पानी बह चला। तिसपर भी जलोद्भव अपनी शरारतसे बाज न आया और आधुनिक हरि पर्वतकी जड़के पास जमीनके अन्दर जा छिपा। देवी पार्वती उसकी बदमाशी ताड़ गई और उसके सिरपर एक पहाड़ ला पटका, जिससे वह वहीं चकनाचूर हो गया। इसी पहाड़को आजकल हरिपर्वत कहते हैं। प्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ डाक्टर स्टीनका मत है

है कि हरि पर्वतका वास्तविक नाम सारिका पर्वत है। उनका कहना है कि काश्मीरी भाषामें संस्कृतका 'स' 'ह' हो जाता है। इस प्रकार 'सारिका' से 'हारिका' और हारिकासे 'हरि' होगया है। संभवतः झीलके बीचमें इस पहाड़के रहनेसे वहाँ सारिका-यें बैठती हों और उसका नाम सारिका पर्वत पड़ गया हो। कश्यपके नामसे यह स्थान कश्यपमर (कश्यपका घर) कहलाने लगा जो पीछे बिगड़कर कश्यमर और फिर काश्मीर हो गया। जो हो काश्मीरका पहले झील होना साधारण विश्वास है और यह भी मालूम होता है कि बहुत प्राचीन समयमें यहाँकी आबादी ठण्डके कारण अधिकतर पशुओंकी ही थी।

काश्मीरियोंका कथन है कि पुराने समयमें काश्मीरमें असंख्य राजे थे, जिन्हें कोट-राजा कहते थे। इनके अधिकारमें थोड़ेबहुत गाँव होते थे और वे आपसमें लड़ा कटा करते थे। अन्तमें इनमें जो राजे हारने लगे, उन्होंने मिल कर जम्मूसे एक वीर राजपूतको सहायतार्थ बुलाया। संभवतः इसका नाम 'दयाकरण' था। इसके वंशमें ५५ राजे हुए, जिन्होंने ६३३ वर्षोंतक काश्मीरमें राज्य किया। अन्तिम राजा सोमदत्त महाभारतकी लड़ाईमें मारा गया। उसके बाद प्रथम गोनन्द राजगद्दीका अधिकारी हुआ। उसके राज्यभार ग्रहण करनेका समय कल्हणके अनुसार २४४८ बी. सी. और रमेशचन्द्र

दत्तके अनुसार १२६० बी. सी. है। कोई कोई इसका समय ३१२१ बी. सी. भी बताते हैं। उसके बाद ५३ राजे हुए, जिन्होंने १८९४ बी. सी. तक राज्य किया और जिनमें तीसरा राजा द्वितीय गोनन्द और ४७ वाँ अशोक था। द्वितीय गोनन्दके बादके ३५ राजाओंका नाम राजतरंगिणीमें नहीं है। कल्हण कहता है कि वे खोगये हैं। एक पुस्तकमें अशोकके काश्मीर-विजय करनेका समय १३९४ बी. सी. दिया हुआ है। यद्यपि राजतरंगिणीके अनुसार यह समय असंभव नहीं है, तो भी इसपर पूर्ण विश्वास नहीं होता; क्योंकि इससे यह सिद्ध होता है कि, उपर्युक्त ५४ राजाओंमें अन्तिम सात राजाओंने ५०० वर्षतक राज्य किया, जो असंभव न होने पर भी, संदिग्ध अवश्य है। राजतरंगिणीमें अशोक बौद्ध धर्मका प्रचारक बतलाया गया है, पर जिस बौद्ध-धर्म-प्रचारक अशोकका हम जिक्र करते हैं, उसका राज्यकाल साधारणतया २७३ या २७२ से २३२ या २३१ बी. सी. तक समझा जाता है। अशोकके बाद उसका लड़का 'जलोक' राजा हुआ। वह शैव था और इसलिए उसके समयमें बौद्ध धर्मका हास होने लगा। राजतरंगिणीके सिवाय और किसी जगह अशोकपुत्र जलोकका नाम नहीं पाया जाता। उसके बाद द्वितीय दामोदर और तदुपरान्त हुविष्क जुष्क और कनिष्क और सबसे पीछे प्रथम अभिमन्यु

राजा हुआ । दामोदर साधारण राजा हुआ । हुविष्क आदि पिछले तीन राजे जातिके तातार और धर्मके बौद्ध थे । इनके यहाँके राजा होनेमें कुछ भी सन्देह नहीं है, क्यों कि और भी कई स्थानोंमें इनका, विशेष कर हुविष्क और कनिष्कका जिक्र है । कनिष्कने काश्मीरमें अश्वघोषके सभापतित्वमें बौद्ध-धर्मावलम्बियोंकी एक सभा भी की थी ।

राजतरंगिणीके अनुसार उसके सिंहासनारोहण-का समय १९ वी सदी बी. सी. है । पर साधारणतया उसका समय ९९ ए. डी. या किसीके अनुसार १२० ए. डी. हो । उसके बाद प्रथम अभिमन्युने राजतरंगिणीके अनुसार १८९४ वी. सी. तक राज्य किया, जिसके समयमें बौद्ध धर्म काश्मीरसे जड़से उखाड़ डाला गया । (क्रमशः)

शाकटायनाचार्य ।

शाकटायन नामके दो आचार्य हो गये हैं—एक वैदिक शाकटायन और दूसरे जैन शाकटायन । ये दोनों ही वैयाकरण हैं । इनमेंसे पहले वैदिक शाकटायन बहुत ही प्राचीन हैं । ऋग्वेद और शुक्ल यजुर्वेदके प्रातिशाख्यमें तथा यास्काचार्यके निरुक्तमें उनका उल्लेख मिलता है । सुप्रसिद्ध पाणिनि आचार्यने अपनी अष्टाध्यायीके तीसरे और आठवें अध्यायमें शाकटायनके मतका उल्लेख किया है । पाणिनि कब हुए, इस विषयमें विद्वानोंमें मतभेद है; तथापि अधिकांश विद्वानोंकी रायमें वे ईस्वीसन्से ७००-८०० वर्ष पहले हुए हैं । अतएव शाकटायन इनसे भी पहलेके—इस समयसे लगभग ३००० वर्ष पहलेके—विद्वान् हैं ।

इन वैदिक शाकटायनका कोई व्याकरण ग्रन्थ अवश्य होना चाहिए; परन्तु अभीतक उसका कहीं पता नहीं लगा ।

दूसरे शाकटायन जैन थे । इनका असली नाम पाल्यकीर्ति था; परन्तु बड़े भारी वैयाकरण होनेके कारण जान पड़ता है कि लोग इन्हें शाकटायन कहने लगे और फिर इनका यही नाम बहुत प्रसिद्ध हो गया । जिस तरह कवियोंमें कालिदासकी प्रसिद्धि अधिक होनेसे पीछेके कई कवि कालिदासके नामसे प्रसिद्ध हो गये थे, उसी तरह ये भी शाकटायन कहे जाने लगे । जिस समय शाकटायन व्याकरण (शब्दानुशासन) बना है उस समय शाकटायन,

स्फोटायन, शाकल्य जैसे नाम नहीं रखे जाते थे। जैनोमें उस समय विजयकीर्ति, अर्ककीर्ति, पाल्यकीर्ति जैसे नाम रखनेकी ही प्रथा थी। निर्णयसागर प्रेस द्वारा प्रकाशित प्राचीन लेखमालाके प्रथमभागमें राष्ट्रकूटवंशीय द्वितीय प्रभूतवर्ष महीपतिका शक संवत् ७३५ का लिखा हुआ एक दानपत्र छपा है जिसमें 'शिलाग्राम' के जिनमन्दिरको 'जालमङ्गल' नामक ग्राम देनेका उल्लेख है। इसमें यापनीय संघके श्रीकीर्ति, विजयकीर्ति और अर्ककीर्ति इन तीन आचार्योंका उल्लेख है। जैसा कि आगे चलकर बतलाया जायगा, शाकटायन यापनीय संघके आचार्य थे, और लगभग उसी समय हुए हैं जिस समयका कि उक्त शिलालेख है, अतः उनका 'पाल्यकीर्ति' नाम होना असंभव नहीं।

एकीभावस्तोत्रके कर्ता महाकवि वादिराजसूरिका बनाया हुआ पार्श्वनाथचरित नामका एक काव्य है। यह विक्रम संवत् १०८३ का बना हुआ है। उसकी उत्थानिकामें एक श्लोक है:-

कुतस्स्या तस्य सा शक्तिः
पाल्यकीर्तिर्महौजसः ।
श्रीपदश्रवणं यस्य
शाब्दिकान्कुरुते जनान् ॥

अर्थात् उस महातेजस्वी पाल्यकीर्तिकी शक्तिका क्या वर्णन किया जाय जिसके श्री-पदके सुनेते ही लोग शाब्दिक या व्याकरणज्ञ हो जाते हैं। अमोघवृत्तिका प्रारंभ 'श्रीवीरममृतं ज्योतिः' आदि मंगलाचरणसे

होता है। वादिराजसूरि इस मंगलाचरणके 'श्री' पद पर ही लक्ष्य करके कहते हैं कि पाल्यकीर्ति या शाकटायनके शब्दानुशासनका प्रारंभ करते ही लोग वैयाकरण हो जाते हैं। अर्थात् जो इस व्याकरणका मंगलाचरण ही सुन पाते हैं वे इसे पढ़े बिना और वैयाकरण बने बिना नहीं रहते। इससे यह भी सिद्ध हो जाता है कि उक्त 'श्रीवीरममृतं ज्योतिः' आदि श्लोकके अथवा अमोघवृत्तिके कर्ता भी पाल्यकीर्ति (शाकटायन) ही हैं।

वादिराजसूरिके उक्त श्लोकसे यह निश्चय हो गया कि पाल्यकीर्ति कोई बड़े भारी वैयाकरण थे। अब शाकटायनप्रक्रियाके मङ्गलाचरणको देखिए:-

मुनीन्द्रमभिवन्द्याहं पाल्यकीर्तिं जिनेश्वरं ।
मन्दबुद्धयनुरोधेन प्रक्रियासंग्रहं बुधे ॥

इसमें जो 'पाल्यकीर्ति' शब्द आया है वह जिनेश्वरका विशेषण भी है और एक आचार्यका नाम भी है। एक अर्थसे उसके द्वारा जिनेन्द्रदेवको और दूसरे अर्थसे प्रसिद्ध वैयाकरण पाल्यकीर्तिको नमस्कार होता है। दूसरे अर्थमें मुनीन्द्र और जिनेश्वर ये दो सुघटित विशेषण पाल्यकीर्तिके बन जाते हैं।

प्रक्रियासंग्रहके कर्त्ताने जिन पाल्यकीर्तिको नमस्कार किया है, इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि वे वादिराजके उल्लेख किये हुए पाल्यकीर्ति वैयाकरण ही हैं और जब यह निश्चय हो गया तब यह अनुमान

करना बहुत संगत होगा कि शाकटायनका ही दूसरा नाम पाल्यकीर्ति आचार्य है। शाकटायन-व्याकरणकी प्रक्रिया बनाते समय यह संभव नहीं कि अभयचन्द्रसूरि शाकटायनको छोड़कर अन्य किसी वैयाकरणको न-मस्कार करें।

पाल्यकीर्ति या शाकटायनके व्याकरणका नाम 'शब्दानुशासन' है। स्वयं ग्रन्थकर्ताने और टीकाकारोंने उसे इसी नामसे उल्लिखित किया है, परन्तु ग्रन्थकर्ताके नामके कारण वह शाकटायन व्याकरणके नामसे भी प्रसिद्ध है।

आचार्य शाकटायन या पाल्यकीर्तिने शब्दानुशासनके सिवाय और कितने ग्रन्थोंकी रचना की, इसका कुछ निश्चय नहीं है। वे बड़े भारी विद्वान् थे। व्याकरणके समान न्याय, धर्मशास्त्र, साहित्यादि अन्य विषयोंमें भी उनकी असाधारण गति जान पड़ती है। उनका एक ग्रन्थ पाटणमें मौजूद है जिसका नाम 'केवलिभुक्ति-स्त्रीभुक्ति-प्रकरण' है। इसके सिवाय श्रद्धास्पद मुनि श्रीजिनविजयजीने अपने 'पाटणके जैन-पुस्तक-भण्डार' शीर्षक लेखमें जो सरस्वतीकी जनवरी सन् १९१६ की संख्यामें प्रकाशित हुआ है राजशेखर कविके जिस 'काव्यमीमांसा' नामक ग्रन्थका उल्लेख किया है उसमें पाल्यकीर्तिके मतका उल्लेख करते हुए लिखा है:—

—“ यथा तथा वास्तु वस्तुनो रूपं वक्तु-
प्रकृतिविशेषायत्ता तु रसवत्ता । तथा च
यमर्थं रक्तःस्तौति तं विरक्तो विनिन्दति
मध्यस्थस्तु तत्रोदास्ते, इति पाल्यकीर्तिः । ”

इससे मालूम होता है कि शाकटायनका कोई साहित्यविषयक ग्रन्थ भी है जो अभी उपलब्ध नहीं है।

ईस्वी सन् १८९३ में मि० गुस्तव आपर्टने 'शाकटायनप्रक्रियासंग्रह' प्रकाशित किया और उसकी भूमिकामें बतलाया कि यह वही शाकटायन है जिसका उल्लेख पाणिनि आदिने किया है। उन्होंने शाकटायनमेंसे दो चार सूत्र ऐसे भी निकालकर बतला दिये जो वैदिक शाकटायनके उन्हीं सूत्रोंसे मिलते जुलते थे जिनका कि पाणिनिने अपने सूत्रोंमें उल्लेख किया है। साथ ही यह भी प्रकट किया कि ये शाकटायन जैन थे।

शुरू शुरूमें बहुत लोग आपर्ट साहबके विचारको सच मानने लगे थे। हमारे जैनी भाई तो अपने एक वैयाकरणको तीन हजार वर्षका पुराना समझकर अभिमानसे फूल गये थे, परन्तु जब यह मत सत्यकी कसौटीपर कसा गया, तब बिल्कुल झूठा साबित हुआ। निश्चय हो गया कि पाणिनिके उल्लेख किये हुए शाकटायनसे इन शाकटायनका कोई सम्बन्ध नहीं है। जैन शाकटायन बहुत प्राचीन नहीं हैं। क्योंकि:—

१. शाकटायनकी जितनी टीकायें और वृत्तियाँ हैं वे सब नौवीं शताब्दिके बादके ही विद्वानोंकी ही लिखी हुई हैं। अमोघ-

वृत्ति महाराज अमोघवर्षके समयकी है। क्योंकि उसमें जैसा कि आगे बतलाया जायगा अमोघवर्षका उल्लेख है और अमोघवर्षके नामसे ही उसका अमोघवृत्ति नाम रक्खा गया है। प्रभाचन्द्रकृत न्यास अमोघवृत्तिका व्याख्यान है, अतएव वह उसके पीछेका होना ही चाहिए। चिन्तामणिटीका यक्षवर्माकी है और यह जैसा कि आगे सिद्ध किया जायगा शाकटायनकी महती वृत्ति अमोघवृत्तिको संक्षेप करके रची गई है, अतएव यह भी पीछेकी बनी हुई है। मणि-प्रकाशिका अजितसेनाचार्यकी है और यह चिन्तामणिकी टीका है, अतएव उससे भी पीछेकी है। अजितसेन अपने अलंकार-चिन्तामणिमें जिनसेन और वाग्भटका उल्लेख करते हैं। अतएव ये भी अमोघवर्षके बहुत पीछेके विद्वान् हैं। छट्टी टीका भावसेन त्रैविद्यदेव की है जो कातन्त्रप्रक्रियाके भी रचयिता हैं। यद्यपि इनका समय सुनिश्चित नहीं है तो भी ये अपेक्षाकृत अर्वाचीन ही हैं। सातवीं टीका रूपसिद्धि है जो वादिराजसूरिके सतीर्थ दयापाल मुनिकी बनाई हुई है और उसके बननेका समय वि० संवत् १०८३ के लगभग है। इस तरह ये तमाम वृत्तियाँ अमोघवर्षके पीछेकी हैं। यदि शाकटायन पाणिनिके पहलेका व्याकरण होता, तो अवश्य ही उसकी कोई प्राचीन टीका भी मिलती।

२. शाकटायनके सूत्रपाठमें इन्द्र, सिद्धनन्दि और आर्यवज्र इन तीन वैयाकरणोंका उल्लेख

किया है। इनमेंसे हमारा अनुमान है कि 'सिद्ध नन्दि' प्रसिद्ध जैनेन्द्रव्याकरणके कर्ता पूज्यपाद या देवनन्दिका दूसरा नाम है। 'सिद्ध' शब्द मुनियों आचार्यों और देवोंके लिए अकसर व्यवहृत होता है। अतः देव-नन्दिको सिद्ध-नन्दि कह सकते हैं। इसी तरह 'आर्य वज्र' वज्रनन्दि आचार्यका नामान्तर है। आर्य शब्द आचार्यका पर्यायवाची है। पूज्यपादके शिष्य वज्रनन्दि जिन्होंने द्रविड संघकी स्थापना की थी बहुत बड़े विद्वान् हो गये हैं। देवसेनसूरिके मतसे ये विक्रमकी मृत्युके ५३६ वर्ष बाद हुए हैं। हरिवंश-पुराणके कर्त्ताने देवनन्दिके बाद ही इन्हें वज्रसूरिके नामसे स्मरण किया है। संभव है कि वज्रनन्दि किसी व्याकरणग्रन्थके रचयिता भी हों। यदि सिद्धनन्दिसे देवनन्दिका और आर्य वज्रसे वज्रसूरिका ही मतलब हो, तो मानना पड़ेगा कि शाकटायन व्याकरण बहुत प्राचीन नहीं है—पूज्यपाद आदिसे पीछेका है। पूज्यपादका समय ईसाकी पाँचवीं शताब्दि माना जाता है।

३. शाकटायनके कुछ सूत्र जैनेन्द्र-व्याकरणसे मिलते हैं। यह अच्छी तरह सिद्ध किया जा सकता है कि शाकटायनसे पूज्यपाद पहले हुए हैं, अतएव वे सूत्र पूज्यपादके जैनेन्द्रसे ही लिये गये होंगे। शाकटायनने पूज्यपादका सिद्धनन्दिके नामसे उल्लेख किया है; परन्तु जैनेन्द्रमें शाकटायनके किसी मतका कहीं भी उल्लेख नहीं है। अतएव शाकटायन बहुत प्राचीन नहीं है।

४. शाकटायन व्याकरण पिछले समयमें जैन विद्वानोंमें बहुत प्रचलित रहा है और यही कारण है जो उसपर ७-८ वृत्तियाँ और टीकायें बन गई हैं । आपर्ट साहबके द्वारा प्रकाशित होनेके पहले भी वह दक्षिणके प्रायः सभी जैन पुस्तकभण्डारोंमें प्राप्य था; परन्तु उस समय तक किसी भी जैन विद्वान्, या टीकाकारने इस बातका दावा नहीं किया था कि यह वही व्याकरण है जिसका उल्लेख पाणिनिने किया है । यदि ये प्राचीन शाकटायन होते, तो अवश्य ही इस बातका उल्लेख मिलता । यह दावा जैनोंका नहीं किन्तु आपर्ट साहबका है और निरा मूठा है ।

शाकटायन या शब्दानुशासनके सूत्रों-पर जो अमोघवृत्ति नामकी टीका है, उसके कर्त्ताका नाम किसीको मालूम नहीं है । परन्तु प्रसिद्ध इतिहासज्ञ प्रो० के. बी. पाठकने अनेक प्रमाणोंसे यह अच्छी तरह सिद्ध कर दिया है कि अमोघवृत्तिके कर्त्ता स्वयं सूत्रकार शाकटायन ही थे और यही शाकटायनकी सबसे पहली टीका है । प्रमाण लीजिए:—

श्रीवीरममृतं ज्योतिर्नत्वादिं सर्ववेधसां ।
शब्दानुशासनस्येयममोघा वृत्तिरुच्यते ॥१॥
अविघ्ननेष्टप्रसिद्धयर्थं मंगलमारभ्यते ।

नमः श्रीवर्द्धमानाय प्रबुद्धाशेषवस्तवे ।
येन शब्दार्थसम्बन्धाः सार्वेण सुनिरूपिताः ॥

शब्दो वाचकः अर्थो वाच्यः तयोः सम्बन्धो योग्य-
ता अथवा शब्द आगमः । अर्थः प्रयोजनं । अभ्युद-
यो निःश्रेयसं च । तयोः सम्बन्ध उपायोपेयभावः । ते
येन सर्वसंवहितेन सता तत्त्वतः प्रज्ञापिताः तस्मै

परमार्हन्त्यमहिम्ना विराजमानाय भगवते वर्द्धमानाय ष-
डपि द्रव्याणि अशेषाणि अनन्तपर्यायरूपाणि साकल्ये-
न साक्षात्कुर्वते नमः कुर्वे इत्युत्पस्कारः । एवं कृतमङ्ग-
लरक्षाविधानः । परिपूर्णमल्पग्रन्थं लघुपायं शब्दानुशासनं
शास्त्रमिदं महाश्रमणसंघाधिपतिर्भगवानाचार्यःशाकटा-
यनः प्रारभते । शब्दार्थज्ञानपूर्वकं च सन्मार्गानुष्ठानं ।
अ इ उ ण् । ऋ क् । ए ओ ङ् ।.....हल् ॥ १३ ॥
इति वर्णसमात्रायः क्रमानुबन्धोपादानः प्रत्याहारयन्
शास्त्रस्य लाघवार्थः । सामान्याश्रयणाद्दीर्घप्लुतानुनासि-
कानां प्रहर्णं ।

—अमोघवृत्तिः ।

श्रियं क्रियाद्भः सर्वज्ञज्ञानज्योतिरनश्वरी ।
विश्वं प्रकाशयच्चिन्तामणिश्चिन्तार्थसाधनः ।
नमस्तमःप्रभावामिभूतभूद्योतहेतवे ।
लोकोपकारिणे शब्दब्रह्मणे द्वादशात्मने ॥२॥
स्वस्तिश्रीसकलज्ञानसाम्राज्यपदमाप्तवान् ।
महाश्रमणसंघाधिपतिर्यः शाकटायनः ॥३॥
एकः शब्दाम्बुधिं बुद्धिमन्दरेण प्रमथ्य यः ।
सयशःश्रि समुद्भूतं विश्वं व्याकरणाभृतम् ॥
स्वल्पग्रन्थं सुखोपायं सम्पूर्णं यदुपक्रमं ।
शब्दानुशासनं सार्वमर्हच्छासनवत्परम् ॥५॥

इष्टिर्नेष्टा न वक्तव्यं
वक्तव्यं सूत्रतः पृथक् ।
संख्यातं नोपसंख्यानं
यस्य शब्दानुशासने ॥ ६ ॥
तस्यातिमहतीं वृत्तिं
संहत्येयं लघीयसी ।
सम्पूर्णलक्षणा वृत्ति-
र्वक्ष्यते यक्षवर्मणा ॥ ७ ॥
ग्रन्थविस्तरभीरूणां
सुकुमारधियामयं ।
शुश्रूषादिगुणान्कर्तुं
शास्त्रे संहरणोद्यमः ॥ ८ ॥
शब्दानुशासनस्यान्व-
र्थायाश्चिन्तामणेरिदं ।
वृत्तेर्ग्रन्थप्रमाणं (हि)
षट्सहस्रं निरूपितं ॥ ९ ॥
इन्द्रचन्द्रादिभिःशाब्दै-
र्यदुक्तं शब्दलक्षणं ।

तदिहास्ति समस्तं च
यज्ञेहास्ति न तत्क्वचित् ॥ १० ॥
गणधातुपाठयोगण-
धातुर्लिङ्गानुशासने लिङ्गतं ।
औणादिकानुणादौ शेषं
निःशेषमत्र वृत्तौ विद्यात् ॥ ११ ॥
बालाबलाजनोप्यस्या
वृत्तेरभ्यासवृत्तितः ।
समस्तं वाङ्मयं वेत्ति
वर्षेणैकेन निश्चयात् ॥ १२ ॥

तत्र सूत्रस्यादावयं मङ्गलश्लोकः । नमः श्रीवर्द्धमाना-
येत्यादि । शब्दार्थसम्बन्धार्थं वाचकवाच्ययोग्यता अथ-
वा आगमप्रयोजनोपायोपेयभावाः ते येन सर्वसत्त्वहितेन
तत्त्वतः प्रज्ञापिताः तस्मै श्रीमते महावीराय साक्षात्कृत्स-
कलद्रव्याय नमःकरोमीत्यभ्याहारः । विघ्नप्रशमनार्थ-
मर्द्धदेवतानमस्कारं परममङ्गलमारभ्य भगवानाचार्यः
शाकटायनः शब्दानुशासनं शास्त्रमिदं प्रारभते ।

धर्मार्थकाममोक्षेषु तत्त्वार्थावगतिर्यतः ।
शब्दार्थज्ञानपूर्वोति वेद्यं व्याकरणं बुधैः ॥

अ इ उ ण् । ऋक् । ए औ ङ् ।
हल् इति वर्णं समाप्तायः क्रमानुवाधोपादानः
प्रत्याहारयन् शास्त्रस्य लाघवार्थः । सामान्यग्रहणाद्दीर्घ-
प्लतानुनासिकानां ग्रहणम् ।

— चिन्तामणि ।

चिन्तामणिके कर्ता यक्षवर्माने उपरिलिखित
सातवें श्लोकमें कहा है कि “यह उसकी
छोटी वृत्ति है जिसे मैंने उसकी (शाकटायन-
की) बहुत बड़ी भारी वृत्तिसे संक्षिप्त करके
बनाया है ।” वे यह नहीं कहते कि यह मेरी
स्वतंत्र रचना है । अब यह देखना चाहिए कि
वह अति महती या बहुत बड़ी वृत्ति कौनसी
है जिसको संक्षिप्त करके यह लिखी
गई है । विचार करके देखा जाय तो मालूम
होगा कि वह वृत्ति और कोई नहीं अमोघ-
वृत्ति ही है । क्योंकि एक तो उपलब्ध

वृत्तियोंमें वही सबसे बड़ी है । दूसरे ऊपर
लिखी हुई दोनों प्रशस्तियोंके कुछ भाग
समान हैं जो यह बतलाते हैं कि एक वृत्ति
दूसरीको देखकर या उसीको संक्षेप करके
बनाई गई है । ‘ इति वर्णसामान्यायः ’ आदि
पाठ दोनोंके मिलते जुलते हुए हैं । अन्तर
केवल यह है कि जहाँ अमोघवृत्तिमें
‘ सामान्याश्रयणात् ’ लिखा है वहाँ चिन्ता-
मणिमें ‘ सामान्यग्रहणात् ’ है । तीसरे यक्ष-
वर्माने जिस मङ्गलश्लोककी ‘ नमः श्रीवर्ध-
मानायेत्यादि ’ प्रतीक दी है, वह अमोघ
वृत्तिमें ही मिलता है । मूलका या अन्य
किसी वृत्तिका वह श्लोक नहीं है । इस
श्लोकके उत्तरार्धकी व्याख्या भी अमोघ-
वृत्तिसे थोड़ा बहुत इधर उधर करके
नकल कर दी गई है । इन सब बातोंसे यह
तो निश्चय हो गया कि चिन्तामणि टीका
अमोघवृत्तिसे पीछे बनी है और वह अमोघ-
वृत्तिका ही संक्षेप है ।

यक्षवर्माने अपनी टीका अमोघवृत्तिमें
ही कुछ फेरफार करके बनाई है, यह बात
दोनों टीकाओंका मिलान करनेसे अच्छी
तरह समझमें आ जाती है । कुछ उदाह-
रण लीजिए:—

नामदुः१।१।१७। (मूल शाकटायनसूत्र)

यन्नामधेयं संव्यवहाराय ह्यटान्त्रियुज्यते देवदत्तादि
तद्दुसंज्ञं वा भवति । देवदत्तीया दैवदत्ताः । षड्दन्त्या-
नाहुः सिद्धसेनीयाः सैद्धसेनाः । (-अमोघवृत्ति ।)

यन्नामधेयं संव्यवहाराय ह्यटान्त्रियुज्यते देवदत्तादि
तद्दुसंज्ञं वा भवति । देवदत्तीया दैवदत्ताः ।

(-चिन्तामणिटीका)

कहीं कहीं पर तो यक्षवर्माने अमोघवृत्ति ज्योंकी त्यों नकल भर कर दी है । जैसे:-

ख्याते दृश्ये १४।३।२०७। (मूल)

भूतेऽनद्यतने ख्याते लोकविज्ञाते दृश्ये प्रयोक्तुः शक्यदर्शने वर्तमानाद्वातोर्लङ्प्रत्ययो भवति । लिङ्पवादः । अरुणदेवः पाण्ड्यम् । अदहदमोघवर्षोरा-
तान् । ख्यात इति किम् ? चकार कटं देवदत्तः । दृश्य इति किम् ? जघान कंसं किल वासुदेवः । अनद्यते इति किम् ? उदगादादित्यः । (-अमोघवृत्तिः)

उक्त सूत्रपर चिन्तामणिकी टीका भी इसी प्रकार है । अन्तर सिर्फ इतना ही है कि अमोघमें जहाँ 'लङ् प्रत्ययो' लिखा है, वहाँ चिन्तामणिमें केवल 'लङ्' लिखा है 'प्रत्यय' छोड़ दिया है ।

उपर्युक्त बातोंसे यह तो सिद्ध हो गया कि चिन्तामणि अमोघवृत्तिसे पीछे बनी है और उसीको संकोच करके बनाई गई है । अब यह देखना है कि अमोघवृत्तिका कर्ता कौन है ? चिन्तामणिटीकाके पूर्व ३-४-५-६-७ श्लोकोंका अर्थ अच्छी तरह लगानेसे इसका निश्चय हो जायगा ।

३—जिन्होंने सकलज्ञानरूपी साम्राज्य पदको प्राप्त किया और जो बड़े भारी साधु-समूहके अगुआ थे, वे शाकटायनाऽचार्य जयवन्त हों ।

४—जिन अकेलेने बुद्धिरूप मन्दराच-लसे शब्दसमुद्रका मंथन करके, उसमेंसे यशरूप लक्ष्मीके साथ साथ सम्पूर्ण व्याकरणों-का साररूप यह अमृत निकाला ।

५—जिनका रचा हुआ शब्दानुशासन आर्हत धर्मकी तरह स्वल्पग्रन्थ (प्रमाणमें थोड़ा), सुखसाध्य और सम्पूर्ण है ।

६—जिस (शाकटायनमुनि) के शब्दानुशासनमें इष्टि, उपसंख्यान, वक्तव्य, न वक्तव्य आदिका झगड़ा नहीं है ।

७—उसकी (तस्य शाकटायनस्य) बड़ी भारी वृत्ति (अमोघवृत्ति) को संकोच करके यह छोटीसी परन्तु सम्पूर्णलक्षणोंवाली वृत्तिको मैं (यक्षवर्मा) कहूँगा ।

ध्यान रखना चाहिए कि ये पाँचों श्लोक शाकटायनका वर्णन करनेवाले हैं । इनमेंके यः (श्लो० ३-४) यदुपक्रम शब्दका यत् (श्लो० ५) और यस्य (श्लो० ६) ये तीनों सम्बन्धद्योतक सर्वनाम सातवें श्लोकके तस्य शब्दसे सम्बन्ध रखते हैं । यह 'तस्य' शब्द कर्तरि षष्ठिमें बनाया गया है और यह सातवें पद्यका मुख्य वाक्यांश है । अन्वय इस तरह होता है—'यदुपक्रमं शब्दानुशासनं सार्वं तस्य महतीं वृत्तिं संहृत्य इयं लघी-यसी वृत्तिर्वक्ष्यते यक्षवर्मणा' अर्थात् जिसका बनाया हुआ सर्वोपयोगी शब्दानुशासन नामक व्याकरण है, उसीकी बनाई हुई बहुत बड़ी टीकाको संकोचकर मैं एक छोटीसी टीका बनाता हूँ । इससे निश्चय हो गया कि मूल शब्दानुशासन और उसकी अमोघवृत्ति टीका ये दोनों ग्रन्थ एक शाकटायनने ही बनाये हैं ।

मि० राइस साहबने इसके लिए चिदानन्द काविके 'मुनिवंशाभ्युदय' नामक कनड़ी काव्य-से एक प्रमाण दिया है । यह कवि मैसूरके चिक्कदेव नामक राजाके समयमें (ई० सन् १६७२-१७०४) हुआ है और 'चारु-

कीर्ति पण्डितदेव' इसकी उपाधि थी। कविके कनड़ी श्लोकोंका अर्थ यह है:—

“उस मुनिने अपने बुद्धिरूप मन्दराचलसे श्रुतरूप समुद्रका मंथनकर यशके साथ व्याकरणरूप उत्तम अमृत निकाला। शाकटायनने उत्कृष्ट शब्दानुशासनको बनानेके बाद अमोघवृत्ति नामकी टीका—जिसे ‘बड़ी शाकटायन’ कहते हैं—बनाई, जिसका कि परिमाण १८००० है। जगत्प्रसिद्ध शाकटायन मुनिने व्याकरणके सूत्र और साथ ही पूरी वृत्ति भी बनाकर एक प्रकारका पुण्य सम्पादन किया। एक बार अविद्धकर्ण सिद्धान्तचक्रवर्ती पद्मनन्दिने मुनियोंके मध्य पूजित हुए शाकटायनको ‘मन्दरपर्वतके समान धीर’ विशेषणसे विभूषित किया।”

गणरत्नमहोदधिके कर्ता वर्धमान कवि— जो कि विक्रमसंवत् ११९७ में हुए हैं—अपने ग्रन्थमें शाकटायनके नामसे जिन जिन बातोंको उद्धृत करते हैं वे अमोघवृत्तिमें ही मिलती हैं, मूलसूत्रोंमें नहीं। इससे मालूम होता है कि वर्धमान जानते थे कि अमोघवृत्ति शाकटायनकी ही है और इसी लिए उन्होंने उसके उदाहरण शाकटायनके नामसे देना अनुचित न समझा।

शाकटायनस्तु कर्णे टिरिटिरिः
कर्णे चुरुचुरुरित्याह।

(-गणरत्नमहोदधि पृष्ठ ८२ और अमोघ० २।१।५७)

शाकटायनस्तु अद्य पञ्चमी
अद्य द्वितीयोत्याह।

(-गणरत्न० पृष्ठ ९०, अमोघवृत्ति २।१।७९)

जैनधर्मके और इतिहासके मर्मज्ञ विद्वान् मुनि जिनविजयजीने इस विषयमें एक बहुत ही पुष्ट प्रमाण दिया है। वह यह है कि विक्रमकी तेरहवीं शताब्दिमें मलयगिरिसूरि नामके एक श्वेताम्बराचार्य हो गये हैं। उन्होंने अनेक ग्रन्थोंकी रचना की है और उनमें प्रायः शाकटायन व्याकरणका उल्लेख किया है। ‘नन्दिसूत्र’ नामक जैनागमकी टीकामें वे एक जगह लिखते हैं:—

शाकटायनोऽपि यापनीययतिग्रामाभ्रणीः स्वोपज्ञ-
शब्दानुशासनवृत्तावादौ भगवतः स्तुतिमेवमाह—
‘श्रीवीरममृतं ज्योतिर्नेत्वादि सर्ववेधसाम् ।’ अत्र च
न्यासकृतव्याख्या—सर्ववेधसां सर्वज्ञानानां सकलशास्त्रानु-
गतपरिज्ञानानां, आदि प्रभवं प्रथममुत्पत्तिकारणमिति ।
(-नन्दिसूत्र पृष्ठ २३)

इसमें ‘श्रीवीरममृतं—’ इत्यादि जो दो पाद हैं वे अमोघवृत्तिके प्रथम श्लोकके हैं और इन्हें मलयगिरि शाकटायनकी स्वोपज्ञवृत्तिके बतलाते हैं। इससे स्वतः सिद्ध है कि अमोघवृत्ति ही स्वोपज्ञवृत्ति है।

अब यह देखना चाहिए कि अमोघवृत्तिकी रचना किस समय हुई। ऊपर ‘रूयते दृश्ये’ सूत्रकी जो अमोघवृत्ति दी है, उसमें एक उदाहरण दिया गया है—‘अदह-दमोघवर्षोऽरातीन्’ * अर्थात्, अमोघवर्षने

* इसी सूत्रकी वृत्तिमें एक उदाहरण और है—
‘अरुणदेवः पाण्ड्यम्’ अर्थात् देवने पाण्ड्यनरेशको रोका। अमोघवर्षके शर्वदेव, तुंगदेव आदि कई नाम हैं। आश्चर्य नहीं जो इस ‘देव’से मतलब उन्हींका हो और उन्होंने किसी पाण्ड्य राजाको हराया हो।

शत्रुओंको जला दिया । इस उदाहरणमें ग्रन्थकर्त्ताने प्रथम अमोघवर्षकी अपने शत्रुओंपर विजय पानेकी जिस घटनाका उल्लेख किया है, उसीका जिक्र शक संवत्-८३२ के एक राष्ट्रकूट-शिलालेखमें एपि-ग्राफिआ इंडिका वोल्यूम १ पृष्ठ ९४ 'भूपालान् कण्टकाभान् वेष्टयित्वा ददाह' इन शब्दोंमें किया है । इसका भी अर्थ लगभग वही है—'प्रथम अमोघवर्षने उन राजाओंको घेरा और जला दिया जो उससे एकाएक विरुद्ध हो गये थे ।' उक्त शिलालेख अमो-घवर्ष प्रथमके बहुत पीछे लिखा गया था, इस लिए इसमें परोक्षार्थवाली 'ददाह' क्रिया दी है । उसके लेखकके लिए उक्त घटनाका स्वयं देखना अशक्य था; परन्तु अमो-घवृत्तिके कर्त्ताके लिए वह शक्य था, इसलिए उसने 'अदहत्' यह लङ्प्रत्ययकी क्रिया दी है । अर्थात् यह उसके सामनेकी घटना होगी । बगमुराके दानपत्रमें जो शक संवत्-७८९ का लिखा हुआ है, इस घटनाका उल्लेख है । उसमें जो कुछ लिखा है उसका अभिप्राय यह है कि गुजरातके माण्डलिक-राजा एकाएक बिगड़ खड़े हुए थे और उन्होंने अमोघवर्षके विरुद्ध शस्त्र ग्रहण किया था । अमोघवर्षने उस समय उनपर चढाई करके उन्हें तहस नहस कर डाला । इस युद्धमें ध्रुव घायल होकर मारा गया । अमोघवर्ष शक संवत् ७३६ में सिंहासनपर बैठे थे और यह दानपत्र शक ७८९ का है । अतः सिद्ध हुआ कि अमोघवृत्ति शक ७३६—

७८९ के मध्य किसी समय रची गई है और यही पाल्यकीर्ति या शाकटायनका समय है ।

इतिहासके पाठकोंसे यह छुपा नहीं है कि राष्ट्रकूटवंशीय महाराज अमोघवर्ष (प्रथम) जैनसाहित्यके बड़े भारी आश्रयदाता हो गये हैं । दिगम्बर जैनसम्प्रदायके आचार्य जिनसेनको वे अपना गुरु मानते थे । अतः यदि उस समयके प्रसिद्ध वैयाकरण शाकटायनने उनके सन्तोषार्थ अपनी वृत्तिका नाम अमोघवृत्ति रक्खा हो, तो कुछ आश्चर्य नहीं है । और फिर 'अदहदमोघवर्षोऽरातीन्' इस उदाहरणसे तो—जो अमोघवृत्तिमें दिया गया है—अमोघवर्ष और अमोघवृत्तिके कर्त्ता की समकालीनता और भी अधिक स्पष्ट हो जाती है ।

ऊपर मलयगिरिसूरिकी नन्दिसूत्रटीकाका जो कुछ अंश उद्धृत किया है, उससे मालूम होता है कि शाकटायन 'यापनीय-यति-ग्रामाग्रणीः' अर्थात् यापनीय संघके आचार्योंके अगुए थे । यापनीय संघका उल्लेख इन्द्र-नन्दिकृत नीतिसारमें मिलता है—

गोपिच्छिकः श्वेतवास्तो

द्राविडो यापनीयकः ।

निःपिच्छिकश्च पंचैते

जैनाभासाः प्रकीर्तिताः ॥

अर्थात् गोपिच्छिक (काष्ठासंघ), श्वेता-म्बर, द्राविड, यापनीय और निःपिच्छिक (माथुर संघ) ये पाँच जैनाभास हैं । दिग-म्बरसम्प्रदायकी दृष्टिसे ये पाँचों संघ जैन

होकर भी जैन नहीं हैं—निन्हव हैं । अतः यापनीय संघके अगुआ शाकटायन भी एक प्रकारके निन्हव थे ।

देवसेनसूरिने अपने दर्शनसारमें इस संघके आविर्भावका समय बतलाया है:—

कल्लाणे वरणयरे
सत्तसप पंच उत्तरे जादे ।
जावणियसंघभावो
सिरिकलसादो हु सेवडडो ॥

अर्थात् कल्याण नामक नगर (निजामके राज्यके अतर्गत) में विक्रमकी मृत्युके ७०५ वर्ष बाद श्रीकलशं नामके श्वेताम्बरसे यापनीयसंघकी उत्पत्ति हुई ।

देवसेनसूरिने द्राविड़ आदि संघोंमें कौन कौन विरुद्ध बातें मान्य हैं, उनका थोड़ा थोड़ा उल्लेख किया है; परन्तु यापनीय संघके सम्बन्धमें उपर्युक्त गाथाके अतिरिक्त कुछ भी नहीं कहा । इससे यह नहीं बतलाया जा सकता कि यापनीय संघमें और संघोंकी अपेक्षा क्या विशेषता है । पहले हमारा खयाल था कि जिस तरह एक दो बहुत ही मामूली बातोंके कारण काष्ठासंघ जैनाभास बना दिया गया है, उसी तरह यापनीय संघ भी होगा—अर्थात् यह दिगम्बरसम्प्रदायका ही एक भेद होगा । परन्तु खोज करनेसे हमारा यह खयाल गलत निकला । यापनीयसंघ यद्यपि एक स्वतंत्र संघ था, तो भी

१ दर्शनसारकी इस गाथाके पूर्वकी अन्य सब गाथाओंमें ' विक्रमरायस्स मरणपत्तस' पद दिया है, इसी लिए यहाँ विक्रमकी मृत्युके ७०५ वर्ष बाद लिखा है ।

वह दिगम्बर सम्प्रदायकी अपेक्षा श्वेताम्बर सम्प्रदायसे निकटका सम्बन्ध रखता था । दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायमें जो मतभिन्नताये हैं उनमें स्त्रीमुक्ति और केवलिभुक्ति ये दो बातें मुख्य हैं । दिगम्बर सम्प्रदायकी मानता है कि स्त्रियोंको उसी भवमें मुक्ति नहीं मिल सकती और केवलज्ञानी भोजन नहीं करते । पर यापनीयसंघ इन बातोंको श्वेताम्बर सम्प्रदायके ही समान मानता है, अर्थात् उसकी दृष्टिसे स्त्रियाँ मुक्तिलाभ कर सकती हैं और केवली आहार करते हैं । पाटणके प्राचीन जैनभण्डारमें यापनीयसंघका एक ग्रन्थ मिला है जिसका नाम है ' स्त्रीमुक्तिकेवलभुक्तिप्रकरण ' और पाठकोंको यह जानकर आश्चर्य होगा कि इसके रचयिता और कोई नहीं, शाकटायन—व्याकरणके कर्ता स्वयं शाकटायन हैं । यह ग्रन्थ पाटणके संघवी पाड़ेके भण्डारमें ताड़पत्रों पर लिखा हुआ है । श्रीमान् मुनिमहाशय जिन-विजयजीकी कृपासे हमें इसका परिचय प्राप्त हुआ है । वे कहते हैं कि यह ग्रन्थ १२ वीं शताब्दिके आसपासका लिखा हुआ है । इसमें केवल ७९ कारिकायें हैं जिनमें ४६ स्त्रीमुक्तिविषयक और शेष ३४ केवलिभुक्तिविषयक हैं । इनमें वे सब युक्तियाँ दे दी गई हैं जो श्वेताम्बरोंकी ओरसे दिगम्बरोंके प्रति उपस्थित की जाती हैं । इसका आदि भाग इस प्रकार है—

प्राणिपत्य भुक्तिमुक्ति—
प्रदममलं धर्ममहंतो दिशतः ।

दक्षये स्त्रीनिर्वाणं केवलि-
भुक्तिं च संक्षेपात् ॥ १ ॥
अस्ति स्त्रीनिर्वाणं पुंवद्-
यदविकलहेतुकं स्त्रीषु ।
न विरुद्धयते हि रत्न-
त्रयसम्पन्नवृतेर्हेतुः ॥
रत्नत्रयं विरुद्धं स्त्रीत्वेन-
यथामरादिभावेन ।
इति वाङ्मात्रं नात्र-
प्रमाणमाप्तागमोऽन्यद्वा ॥ ३ ॥

अन्तकी कारिका—

विग्रहगतिमापन्ना-
द्यागमवचनं च सर्वमेतस्मिन् ।
भुक्तिं ब्रवीति तस्माद्-
दृष्टव्या केवलानि भुक्तिः ॥ ३२ ॥
नाना भोगाहारो निरन्तरः
सो विशेषितो न भूत् (?)
युक्त्या भेदेनाङ्गस्थिति-
पुष्टिशुच्छमास्तेन ॥ ३३ ॥
तस्य विशिष्टस्य स्थिति-
रभविष्यत्तेन साविशिष्टेन ।
यद्यभविष्यद्वैहेषां-
सालीतरभोजनेनेव ॥ ३४ ॥

इति स्त्रीनिर्वाणकेवलिभुक्तिप्रकरणं भग-
वदाचार्यशाकटायनकृदन्तपादानामिति ।

१९ वीं शताब्दिमें एक विद्वान्ने, अपने समयमें उपलब्ध जैनश्वेताम्बर ग्रन्थोंकी एक नामावली संस्कृतमें बड़ी खोजके साथ लिखी है । उसमें कौन ग्रन्थ, किस भाषामें, किस विद्वान्ने, किस समय, कितना बड़ा और किस विषयका लिखा है इसका संक्षिप्त विवरण—जहाँ तक उपलब्ध हो सका— लिखा है । इस सूचीका नाम है 'बृहट्टि-पणिका' । इस टिप्पणिकामें इस प्रकरणका भी नाम है:—

—“केवलिभुक्ति-स्त्रीभुक्तिप्रकरणम् ।
शब्दानुशासनकृतशाकटायनाचार्यकृतं तत्सं-
ग्रहश्लोकाश्च ९४ । ” *

ऐसा जान पड़ता है कि पुराने विद्वानोंमें-
यह प्रकरण अच्छी तरह परिचय था ।
वादिवेताल शांतिसूरिने उत्तराध्ययनसूत्रकी
बृहत्-टीकाके ३६ वें अध्यायमें और रत्न-
प्रभाचार्यने रत्नाकरावतारिकामें स्त्रीभुक्ति-
प्रकरणकी कुछ कारिकायें उद्धृत की हैं । इसी
तरह यशोविजयजी उपाध्यायने अपनी अध्या-
त्ममतपरीक्षा तथा शास्त्रवार्तासमुच्चयमें भी
इसकी कारिकायें उद्धृत की हैं ।

स्त्रीभुक्तिप्रकरणमें मुनियोंके वस्त्रका
उल्लेख है, इससे मालूम होता है कि या-
पनीय संघके मुनि नग्न न रहते थे ।

शाकटायनके उक्त प्रकरणसे ही नहीं,
किन्तु और प्रमाणोंसे भी यह सिद्ध होता है
कि यापनीयसंघ स्त्रीभुक्ति मानता था । हरि-
भद्रसूरिकृत ललितविस्तरमें लिखा है:—

स्त्रीग्रहणं तासामपि तद्भव एव संसारक्षयो
भवतीति ज्ञापनार्थं, वचः यथोक्तं यापनी-
यतन्त्रे—“णो खलु इत्थि अजीवो, ण यावि
अभव्वा, ण यावि दंसणविरोहिणी, णो
अमाणुसा, णो अणारि उत्पती, णो असं-
खेज्जाउया, णो अइकूरमई, णो ण उवसं-
तमोहा, णो ण सुद्धाचारा, णो असुद्ध-
बोन्दी, णो ववसायवज्जिया, णो अपुव्व-
करणविरोहिणी, णो णयगुणटाणरहिया, णो
अजोगालद्धीप, णो अकल्लाण भायणंति,
कहं न उत्तमधम्मसाहिगत्ति ।” (पृ० १०९)

*अनुष्टुप् श्लोकके हिसाबसे यह संख्या लिखी गई
है । आर्या छन्द अनुष्टुप्से बड़ा होता है ।

ऐसा ही पाठ श्रीयशोविजयोपाध्यायने भी शास्त्रावर्तासमुच्चयमें लिखा है।

इससे सिद्ध है कि यापनीय संघ स्त्रीमुक्ति, केषलिमुक्ति और मुनियोंके लिए वस्त्रधारण इन तीनों बातोंको मानता था।

प्रो० पाठकने अमोघवृत्तिसे नीचे लिखे वाक्य उद्धृत करके बतलाया है कि शाकटायन श्वेताम्बर थे:—

अथो क्षमाश्रमणैस्ते ज्ञानं दीयते। (अमोघ० १।२।२०१)

अथो क्षमाश्रमणैर्मे ज्ञानं दीयते। (१।२।२०२)

एतकमावश्यकमध्यापय अथो एनं यथाक्रमं सूत्रम्। (१।२।२०३)

इयमावश्यकमध्यापय अथो एनं यथाक्रमं सूत्रम्। (१।२।२०४)

भवता खलु छेदसूत्रं वोढव्यं। निर्युक्तीरधीश्व। नियुक्तीरधति। (४।४।१३३-४०)

उपसर्वशुभं व्याख्यातारः। उपविशेषवादिनं कवयः। (१।३।१०४)

कालिकासूत्रस्यानध्यायदेशकालाः पठिताः। (३।२।७४)

ऊपरके वाक्योंमें श्वेताम्बराचार्योंका, उनके कार्योंका, तथा श्वेताम्बरसम्प्रदायके आवश्यक निर्युक्तिके अध्ययन करनेका जिक्र शाकटायनने किया है; इससे वे श्वेताम्बर मालूम होते हैं। परन्तु हमारी समझमें उन्हें श्वेताम्बर या दिगम्बर कहनेकी अपेक्षा यापनीय कहना ही ठीक मालूम होता है। यह एक तीसरा ही सम्प्रदाय था जो बहुत पुराने समयमें उत्पन्न हुआ था और न जाने कबका लुप्त हो चुका है। अवश्य ही इसमें

श्वेताम्बरता अधिक मालूम होती है। देवसेनसूरि भी श्रीकलश नामक श्वेताम्बरके द्वारा

इसकी स्थापना बतलाकर इस बातकी पुष्टि करते हैं, परन्तु इससे यह नहीं कहा जा सकता कि यापनीय संघ श्वेताम्बर ही था। प्रो०

पाठकके अमोघवृत्तिके उद्धरणोंमें जहाँ क्षमाश्रमण, आवश्यक, निर्युक्ति, आदि श्वेताम्बर आचार्य और ग्रन्थोंका उल्लेख है वहीं वे

सर्वगुप्त और विशेषवादी जैसे दिगम्बर विद्वानोंका भी उल्लेख करते हैं। ये विशेषवादी कवि वे ही हैं जिनका स्मरण वादिराजसूरिने अपने पार्श्वनाथचरितमें किया है:—

विशेषवादिगीर्गुम्फश्रवणबद्धबुद्धयः।

अकलशादधिगच्छन्ति विशेषाभ्युदयं बुधाः।

इनका बनाया हुआ 'विशेषाभ्युदय' नामका कोई काव्य है। शाकटायन अपने उक्त

उदाहरणमें कहते हैं-'उपविशेषवादिनं कवयः' अर्थात् और सब कवि विशेषवादीसे नीचे हैं।

सर्वगुप्तको वे व्याख्याता बतलाते हैं और ये वे ही जान पड़ते हैं जिनके चरणोंके समीप

बैठकर शिवायन या शिवायने भगवती आराधनाकी रचना की थी:—

अज्ज जिणणंदि गाणि

सव्वगुत्तगणि अज्जमित्तणंदीणं।

अवगमिण्य पाइमूले

सम्मं सुत्तं च अत्थं च ॥

पुव्वायरियणिबद्धा

उपजीवत्ता इमा ससत्तीण्।

आराधणा सिवज्जेण

पाणिदलभोजिणा रइदा ॥

अर्थात् आर्य जिननन्दिगणि आर्य सर्वगुप्त गणि और आर्य मित्रनन्दिके चरणोंके समीप बैठकर तथा भले प्रकार सूत्र और अर्थको समझकर पाणिपात्रभोजी शिवार्यने अपनी शक्तिके अनुसार आराधना शास्त्रकी रचना की ।

इनके सिवाय शाकटायनमें सिद्धनन्दि, (पूज्यपाद) और आर्यवज्र (वज्रनन्दि) इन दो दिगम्बराचार्योंका भी उल्लेख है जिनके विषयमें पहले कहा जा चुका है ।

इससे मालूम होता है कि शाकटायन यदि श्वेताम्बर सम्प्रदायके क्षमाश्रमण आदि मुनियोंका उल्लेख करते हैं तो साथ ही विशेषवादी आदि दिगम्बर विद्वानोंकी भी प्रशंसा करते हैं । इस लिए इससे वे श्वेताम्बर या दिगम्बर नहीं ठहर सकते ।

यह तो मालूम हो गया कि यापनीयसंघ दिगम्बर सम्प्रदायसे अमुक अमुक बातोंमें विभिन्नता रखता है; परन्तु यह मालूम न हुआ कि श्वेताम्बर सम्प्रदायके साथ उसकी क्या विभिन्नता है—यद्यपि यह निश्चय है कि हरिभद्रसूरि जैसे विद्वान् यापनीय तंत्रका एक स्वतंत्र सम्प्रदायके रूपमें उल्लेख करते हैं, अतएव यापनीय श्वेताम्बर सम्प्रदायका कोई गण या गच्छ नहीं हो सकता है । इसका पता तब लग सकेगा जब यापनीयसंघका थोड़ा बहुत धार्मिक साहित्य उपलब्ध हो । श्वेताम्बर दिगम्बर साहित्य तो इस विषयमें सर्वथा मौन है । यह संघ दक्षिण कर्णाटककी ओर विशेष रहा है, अतएव संभव है कि उस ओर इसका कुछ साहित्य उपलब्ध हो ।

शाकटायनकी जितनी टीकायें उपलब्ध हैं प्रायः वे सब दिगम्बरविद्वानोंकी ही हैं । यदि शाकटायन शुद्ध श्वेताम्बर होते, तो दिगम्बर विद्वान् उनके ग्रन्थ पर इतनी टीकायें कदापि न लिखते । श्वेताम्बर सम्प्रदायके विद्वानोंका शायद ही कोई ग्रन्थ ऐसा होगा जिसकी टीका किसी दिगम्बर विद्वान्की की हुई हो ।

शाकटायन अपनेको 'श्रुतकेवलदेशीयाचार्य' पदसे परिचित करते हैं; परन्तु जहाँ तक हम जानते हैं दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायोंमें शककी आठवीं शताब्दि तक श्रुतकेवलियों या एकदेशश्रुतकेवलियोंका सद्भाव नहीं माना गया है । ऐसे ज्ञानियोंका अभाव दोनों सम्प्रदायोंके मतसे बहुत पहले हो चुका है; पर यापनीय संघमें इस बातका नियम नहीं मालूम होता और यही उसकी दोनोंसे भिन्नता है । चिन्तामणिके कर्ता यक्षवर्माने तो उनको 'सकलज्ञानसाम्राज्यको पानेवाला' माना है और यह भी यापनीय संघके सिद्धान्तके अनुसार जान पड़ता है ।

देवसेनसूरिने यापनीय संघकी उत्पत्ति विक्रम मृत्युके ७०९ वर्ष बाद बतलाई है । यदि इसे विक्रमसंवत् ७०९ मान लें तो समझना चाहिए कि शाकटायनसे लगभग २०० वर्ष पहले इस संघकी उत्पत्ति हो चुकी थी । परन्तु इसमें एक विरोध यह उपस्थित होता है कि हरिभद्रसूरिने अपनी ललितविस्तरामें यापनीय तंत्रका उल्लेख किया है जिससे मालूम होता है कि उनसे भी पहले इस संघका अस्तित्व था और हरिभद्रसूरिक

स्वर्गवास विक्रम संवत् ९८९ में माना जाता है—अर्थात् विक्रमसंवत् ९८९ से भी पहले यापनीय संघके अस्तित्वका पता लगता है।

यद्यपि डा० जैकौबी आदि हरिभद्र-सूरिको उपमितिभवप्रपंचाके कर्ता सिद्धर्षिका समसामयिक विक्रमकी दशवीं शताब्दिका मानते हैं; परन्तु उनकी युक्तियाँ भ्रममूलक हैं। विक्रम संवत् ९८९ ही उनका वास्तविक समय जान पड़ता है। ऐसी दशमें समझमें नहीं आता कि हम देवसेनसूरिके बतलाये हुए समयको गलत समझें या हरिभद्रसूरिके समय-निर्णयको।

यापनीयसंघमें कई गण गच्छादि भी थे। द्वितीय प्रभूतवर्ष महाराजके एक दान-पत्रमें यापनीय सम्प्रदायके नन्दि संघ और पुंनागवृक्षमूल गणका उल्लेख मिलता है। यह दानपत्र शक संवत् ७३९ का लिखा हुआ है।

उपसंहार।

शाकटायन जैन थे। उनका दूसरा नाम-पाह्यकीर्ति भी था। वे यापनीय संघके प्रसिद्ध आचार्य थे। यापनीय संघ दिगम्बर श्वेताम्बरके समान एक तीसरा सम्प्रदाय था जो अब लुप्त हो गया है। शाकटायनके शब्दानुशासन (मूलसूत्र), अमोघवृत्ति टीका और 'केवलभुक्तिस्त्रीभुक्तिप्रकरण ये तीन ग्रन्थ उपलब्ध हैं। एक कोई साहित्य-का ग्रन्थ भी उनका है जिसका उल्लेख राजशेखरकी काव्यमीमांसामें किया है। वे राष्ट्रकूटवंशीय महाराज अमोघवर्षके समयमें शक संवत् ७३६—७८९ वि०सं० ८७१ से ९२४) के लगभग वर्तमान थे।

पुस्तक-परिचय ।

१ महावीर-जीवन-विस्तार ।

जैनसमाजमें वर्तमान समयकी आवश्यकताओंको समझनेवाले प्रतिभाशाली लेखकोंका प्रायः अभाव है और यही कारण है जो इतनी जागृति और आन्दोलन होनेपर भी अभीतक महावीर भगवानका—जैनधर्मके प्रधान प्रवर्तक महावीर तीर्थ-करका—कई अच्छा जीवनचरित नहीं है। कमसे कम अजैनोंके हाथमें देने योग्य जीवनचरितका तो बिलकुल अभाव है। आज ऐसी कोई श्रेष्ठ भाषा नहीं है जिसमें बुद्ध-भगवान्का जीवनचरित न मिलता हो; भारतवर्षमें बौद्धधर्मका अभाव होने पर भी यहाँकी प्रायः सभी भाषाओंमें बुद्ध-जीवनी लिखी जा चुकी है; परन्तु जैनधर्मके मानने-वालोंकी संख्या १३ लाख होने पर भी उनके उपास्य देवके चरितके विषयमें लोग बहुत ही थोड़ा जानते हैं। यहाँकी भाषाओंका सहित्य महावीरके पवित्र जीवनसे सर्वथा वंचित है। इस कमीका—आवश्यकताका—अनुभव हम बहुत समयसे कर रहे थे कि आज एकाएक इस ग्रन्थके दर्शन हुए। इसे पढ़कर बहुत सन्तोष हुआ और आशा हुई कि अब वह समय बहुत दूर नहीं है जब महावीर भगवानका एक सर्वांगसुन्दर जीवनचरित लिखा जायगा। इसे गुजराती भाषाके प्रसिद्ध आध्यात्मिक लेखक श्रीयुत भीमजी हरजीवन परीख (सुशील) ने लिखा है और मेसर्स मेधजी हीरजी कम्पनीने प्रकाशित किया है। इसमें भगवानके जीवनकी मुख्य मुख्य घटनाओंको लेकर विचार किया गया है और उनसे भगवानके लोकोत्तर जीवनकी गहरी बातों पर प्रकाश डाला गया है। लेखक अच्छे विचारक हैं, स्वतंत्र मत देनेवाले हैं, जैन-

धर्मके आध्यात्मिक साहित्य और कर्मविज्ञानसे परिचित हैं, इस लिए अपने कार्यमें यथेष्ट सफल हुए हैं। बड़े ही सुन्दर, गंभीर और रहस्यपूर्ण विचारोंको उन्होंने प्रकट किया है। पढ़कर हृदय गदगद हो जाता है और भगवान्‌के प्रति जो भक्तिभावना है वह कई गुणी बढ़ जाती है। इच्छा थी कि कुछ ऐसे प्रकरण पाठकोंके सामने उपस्थित किये जायँ; परन्तु स्थान-संकोचके कारण रुकना पड़ा। लेखकने अपने विचार निर्भय होकर प्रकट किये हैं, इसका परिचय मंखलि गोशाल सम्बन्धी प्रकरणमें मिलता है। जिस समय महावीर भगवान्‌ अपने विचारोंका प्रचार कर रहे थे, उस समय उनका एक प्रतिस्पर्धी था जिसका नाम मंखलिविगोशाल था। बौद्धसाहित्यमें इसका अनेक स्थलोंमें उल्लेख मिलता है। आजीवक नामक सम्प्रदायका प्रवर्तक यही था। इसके अनुयायियोंकी संख्या महावीरके अनुयायियोंसे भी अधिक थी। यह पहले महावीरका शिष्य था, परन्तु पछि उनसे विमुख हो गया था और उनको इसने कष्ट दिया था। श्वेताम्बरसाहित्यमें इस कारण हेमचन्द्राचार्य जैसे समर्थ विद्वानोंने भी साम्प्रदायिक मोहवश उसे बहुत ही निन्द्य और नीच प्रकृतिका पुरुष बतलाया है; परन्तु लेखक कहते हैं—“गोशालाको जैसा मूर्ख, अल्प-बुद्धि और सर्वथा उन्मत्त चित्रित किया है दूर असलमें वह वैसा नहीं था। यह बिलकुल सच है कि मत-भेदकी दृष्टि अपने सामनेके मनुष्यके वास्तविक स्वरूपको देखनेमें अन्तराय डालती है और हम अपने रागद्वेषके तारतम्यके अनुसार उसके वास्तविक स्वरूपको न्यूनधिक अंशमें विकृत देखते हैं, तो भी इस प्रकरणमें इन मतभेदके कारणोंसे गोशालाको जिस रूपमें कितने ही जैनग्रन्थकारोंने अपने आगे उपस्थित किया है, वह किसी भी प्रकार क्षन्तव्य नहीं हो सकता। हेमचन्द्राचार्यकी रचना पढ़कर अज्ञान लोग यही समझ लेते हैं कि वह गोशाला

किसी पागलखानेसे छूटकर भागा हुआ मनुष्य होगा; परन्तु मनुष्यकी सामान्य बुद्धि उसे ऐसा समझनेसे इंकार करती है। हमारे शास्त्र भी बतलाते हैं कि स्वयं महावीर भगवान्‌की अपेक्षा गोशालाका अनुयायी समाज अधिक था और इसीसे मालूम होता है कि उसकी प्रवर्तक शक्ति और लोगोंके हृदयकी स्पर्शित करनेकी सामर्थ्य साधारण न थी।” लेखकने प्रधानतः श्वेताम्बर-साहित्यके आधार पर इसकी रचना की है; परन्तु उनमें साम्प्रदायिक मोह नहीं है, इस कारण उन्होंने कोई बात ऐसी नहीं लिखी है जो दिग्गम्बरोंको अप्रिय हो। पुस्तकमें भगवान्‌की मुख्य मुख्य प्रभाव-शालिनी घटनाओं सम्बन्धी पाँच छह चित्र भी दिये हैं और उनमें तीन चित्र वस्तुयुक्त नहीं किन्तु नग्न चित्रित किये गये हैं और इसके कारण उन्हें श्वेताम्बरी भाइयोंकी तीव्र समालोचनाका पात्र बनना पड़ा है। इस पुस्तकके दो चित्र जैनहितैषीके पहले अंकमें प्रकाशित हो चुके हैं जिनपरसे पाठक चित्रोंकी उत्तमताका अनुमान कर सकते हैं।

पुस्तक छोटी है, परन्तु इस बातके बतलानेके लिए अच्छी है कि भगवानका जीवनचरित किस ढंगसे लिखा जाना चाहिए और उसके लिखनेके लिए किस प्रकारकी योग्यता चाहिए। यदि इसमें महावीर भगवान्‌का ऐतिहासिक परिचय, उस समयकी परिस्थिति, दिग्गम्बरश्वेताम्बर दृष्टिसे भगवानका जीवन और उसका तारतम्य, समवसरण आदि-विभूतियोंका रहस्य आदि बातें और जोड़ दी जायँ, तो एक जीवनचरितकी आवश्यकताकी बहुत कुछ पूर्ति हो जाय। मूल्य डेढ़ रुपया।

हमें आशा है कि जो विद्वान् गुजराती समझ सकते हैं वे इस पुस्तकको मँगकर अवश्य पढ़ेंगे और लेखक तथा प्रकाशकके परिश्रमकी कदर करेंगे।

२ महावीर-भक्त मणिभद्र ।

इस पुस्तकके लेखक और प्रकाशक भी वे ही हैं जो महावीरजीवनविस्तारके हैं। यह एक उप-

न्यास है और शायद जैनसाहित्यमें अबतक जितने उपन्यास लिखे गये हैं उन सबसे अच्छा है। इसका कथानक बिल्कुल कल्पित है और बौद्ध साहित्यकी एक कथाको परिवर्तन करके तैयार किया गया है। बौद्धकथाके बुद्धदेव इसमें भगवान् महावीर और बौद्धउपासक मणिभद्र श्रावक मणिभद्रके रूपमें चित्रित किये गये हैं। मणिभद्र, रत्नमाला, सुभद्र आदिका स्वभावचित्रण बहुत अच्छा हुआ है। रचनानमें अस्वाभाविकता बहुत ही कम है। महावीर भगवानके महत्त्वकी बड़ी सावधानीसे रक्षा की गई है। वैदिक धर्मके विरोधकी अवतारणा करके भी लेखकने अपने हृदयकी विशालताके कारण कोई एक भी शब्द ऐसा नहीं आने दिया है जो धार्मिक द्वेषकी सृष्टि करनेवाला हो और यह करके भी जैनधर्मके प्रति पाठकोंकी सविशेष श्रद्धा आकर्षित करनेमें लेखक समर्थ हुए हैं। रत्नमाला और मणिभद्रका सम्बन्ध हृदयपर बहुत ही गहरा प्रभाव डालता है। रत्नमालाके वचनोंसे सुभद्रके समान और भी अनेक कामुक सुमार्गगामी बन सकते हैं। पुस्तक सचित्र है। सुपसिद्ध चित्रकार धुरन्धरके बनाये हुए तीन चित्रोंसे जो कथाके तीन प्रसंगोंके अनुकूल बना गये हैं—पुस्तक और भी सुन्दर बन गई है। प्रारंभमें जो प्रस्तावना लिखी गई है, वह बड़े विचारसे लिखी गई है और उपन्यासके कई पात्रोंके चरित्रपर सविशेष प्रकाश डालती है। मूल्य बारह आने। पृष्ठ संख्या १६०।

३ चन्द्रप्रभचरित।

अनुवादक, पं० रूपनारायणजी पाण्डेय और प्रकाशक, हिन्दीजैनसाहित्यप्रसारक कार्यालय, बम्बई। पृष्ठ संख्या २००। मूल्य एक रुपया। जैनसाहित्यमें महाकवि वीरनन्दिकृत चन्द्रप्रभचरित बहुत ही अच्छा काव्य है। उसकी जोड़के भावपूर्ण और प्रसादगुणविशिष्ट काव्यबहुत ही थोड़े हैं।

उसी काव्यका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करके साहित्यप्रसारक कार्यालयने हिन्दीमें एक अच्छे ग्रन्थरत्नकी वृद्धि की है। अनुवाद बहुत ही अच्छा, शुद्ध और सरल हुआ है। पढ़ते समय ऐसा मालूम होता है कि हम कोई अनुवाद नहीं किन्तु किसी कविकी धारावाहिक स्वतंत्र रचना पढ़ रहे हैं। हम पहले नहीं जानते थे कि एक अजैन विद्वान्के द्वारा जैनकाव्यका इतना अच्छा अनुवाद हो सकेगा। इसमें कई प्रकरण ऐसे हैं जो जैनधर्मकी जानकारीके बिना अच्छी तरह नहीं समझे जा सकते, परन्तु हम देखते हैं कि अनुवादक उन स्थलोंको भी सफलतापूर्वक पार कर गये हैं। इसके प्रकाशक पं० उदयलालजी काशालीवाल अपने 'वक्तव्य'में लिखते हैं कि "यह अनुवाद हमने एक अजैन विद्वान्से कराया है; कारण हमारे जैन विद्वानोंको एक तो बेचारी हिन्दीभाषा पर प्रेम ही नहीं, हिन्दीभाषामें कुछ लिखना मानो वे अपना अपमानसा समझते हैं। दूसरे उनकी भाषा संस्कृतजटिल और इतनी आडम्बरपूर्ण होती है कि उनसे इतना अच्छा अनुवाद हो भी नहीं सकता था।" इस वक्तव्यके पहले भागसे हम सहमत नहीं। हमारी समझमें—अपराध क्षमा हो—संस्कृतज्ञ जैनपण्डित हिन्दी जानते ही नहीं हैं और इस कारण हिन्दी लिखना उनके लिए अपमानका कारण है। यह बात नहीं है कि हिन्दी लिखनेको वे तुच्छ काम समझते हों—समझते तो अच्छा काम है परन्तु करें क्या, उसे जानते ही नहीं हैं और इसमें उनका कुछ अपराध भी नहीं है। जिन विद्यालयों और पाठशालाओंमें पढ़कर वे विद्वान् होते हैं वहाँ हिन्दी सिखलानेका कोई भी प्रबन्ध नहीं है। वक्तव्यका दूसरा अंश बहुत ठीक है। चन्द्रप्रभचरितका इतना अच्छा अनुवाद सचमुच ही किसी जैनपण्डितसे नहीं हो सकता और न अभी दो चार वर्ष ऐसी आशा करनी चाहिए। हम अपने

पाठकोंसे प्रेरणा करेंगे कि वे इस अनुवादको मँगाकर पढ़ें और प्रकाशकोंके उत्साहको बढ़ावें । साधारणतः पुस्तकका मूल्य अधिक मालूम होता है; परन्तु इसके लिए जो खर्च किया गया है उसको देखते हुए वह अधिक नहीं है ।

४ कतव्यकौमुदी ।

रचयिता शतावधानी मुनि रत्नचन्द्रजी । विवेचक और प्रकाशक, चुनीलाल वर्धमान शाह, सारंगपुर, अहमदाबाद । स्थानकवासी सम्प्रदायमें मुनि रत्नचन्द्रजी संस्कृतके अच्छे विद्वान् हैं । स्मरणशक्ति उनकी बहुत ही प्रबल है । वे संस्कृत कविता भी करते हैं । यह ग्रन्थ उन्हींकी रचना है । २३२ शार्दूलविक्रीडित छन्दोंमें यह पूर्ण किया गया है । इसमें कर्तव्य, शिक्षा, ब्रह्मचर्य, आरोग्य, आश्रमपालन, व्यसनस्वरूप, गृहिणीकर्तव्य, विधवाकर्तव्य, कन्याविक्रय, बाल्यविवाहनिषेध आदि अनेक विषयोंके सम्बन्धमें समयोपयोगी शिक्षा दी गई है । रचना सुन्दर है । एक उदाहरणः—

**यावत्तार्थसमर्जने बलमभूद्-
दारादिनिर्वाहके, यावन्नेतरा स-
मात्तिमगमत्प्रारब्धविद्याकला ।
यावद्बुद्धिविकाशदेहरचने प्राप्ते
दृढत्वं न वा, तावन्नो सुखदं प्रवे-
शनमिहाकाले गृहस्थाश्रमे ॥**

मुनि महोदयने प्रत्येक श्लोकका गुजराती भावार्थ लिखा दिया है और उस पर श्रीयुत शाहने विस्तारपूर्वक विवेचन किया है । विवेचनमें अनेक देशी विदेशी ग्रन्थोंसे उदाहरणादि देकर मूल विषयकी बड़ी अच्छी पद्धतिसे परिपुष्टि की गई है । इससे ग्रन्थकी उपयोगिता बहुत ही बढ़ गई है । बहोदा राज्यमें यह इनाम और लायब्रेरियोंमें रखनेके लिए स्वीकृत हो चुका है और थोड़े ही समयमें इसकी दो आवृत्तियाँ हो चुकी हैं । यह भी ग्रन्थकी उत्तमताका एक निदर्शन है । छपाई, कागज, जिल्द आदि सब ही बातें अच्छी हैं और मूल्य तो

शायद लागतसे भी कम रक्खा गया है । लगभग साढ़े चार सौ पृष्ठोंकी कपड़ेकी सुन्दर सुवर्णाक्षर युक्त जिल्द बँधी हुई पुस्तकका मूल्य आठ आने बहुत ही कम है जो लोग संस्कृत और गुजराती जानते हैं उन्हें इस ग्रन्थकी एक एक प्रति अवश्य मँगा लेना चाहिए ।

५ चम्पा ।

लेखक, श्रीयुत कृष्णलाल वर्मा । प्रकाशक, श्रीयुत अमीचन्द्र जैन, गोहाना (रोहतक) । पृष्ठसंख्या ९२ । मूल्य सात आने । दिल्लीके लाला मनोहरलाल अपनी स्त्री गोमतीके साथ सुखसे रहते थे । सन्तानके लिए दोनोंने बहुत प्रयत्न किये; परन्तु फल कुछ नहीं हुआ । बहुत समयके बाद उनके एक चम्पा नामकी लड़की हुई । गोमतीकी मृत्युके समय मनोहरलालने प्रतिज्ञा की थी कि मैं दूसरी शादी न करूँगा; परन्तु एक ही वर्षके बाद प्रतिज्ञाको भूलकर उसने सुनहरीके साथ शादी कर ली । सुनहरी चम्पाको तरह तरहके कष्ट देने लगी । मनोहरलाल अपनी स्त्रीका गुलाम हो गया, वह भी चम्पाको मारने पीटने लगा । एक बार चम्पाकी पेट्टीमें सोनेकी चूड़ी रखकर सुनहरीने उसे चोरी लगाई । पुलिसने तहकीकात की, तो यह सुबूत हुआ कि सुनहरीने ही चम्पाको कष्ट देनेके लिए यह चालाकी की थी । इससे सुनहरी और भी चिढ़ गई । उसने धन्नाकी मा द्वारा विष मँगाकर उसके लड्डू बनाये और उन्हें चम्पाके लिए रखकर कहीं बाहर चली गई । होनहारकी बात कि मनोहरलाल भूखे हुए और उन्होंने एक लड्डू खा लिया ! बेचारे तड़फने लगे । डाक्टरने जहर खाया हुआ बतलाया । तलाशी हुई । चम्पाकी पेट्टीमें दो लड्डू और भी निकले । वह पकड़ी गई और उसे फाँसीकी आशा हुई । पीछे गोपाल नामके एक लड़कने जो चम्पाको चाहता था, धन्नाकी माके द्वारा पता लगाकर असली अपरा-

धिनी सुनहरीको ढूँढ़ निकाला और पाँसी चढ़नेके ठीक वक्तपर पहुँचाकर चम्पाको बचा दिया । सुनहरीको काले पानीकी सजा हुई । चम्पाके साथ गोपालका व्याह हो गया ।” यही इस पुस्तकका कथानक है । रचनामें अस्वाभाविकता बहुत है । किसी भी पात्रका स्वभावचित्रण सर्वत्र एक सा नहीं हुआ । लेखकने चाहे जिस पात्रसे इच्छाके अनुसार उसके स्थिरीकृत स्वभावका खयाल रखे बिना, चाहे जो काम कराये हैं और चाहे जो शब्द उनके मुँहसे कहलवाये हैं । भाषामें भी स्वाभाविकताका अभाव है । जो काम चार लाइनोंसे निकल सकता था उसके लिए पृष्ठके पृष्ठ व्यर्थ खर्च किये गये हैं । वर्माजी स्वतंत्र रचनाके बड़े प्रेमी हैं । अच्छा हो यदि इसके साथ ही वे रचनापद्धति सीखनेके और परिश्रम करनेके भी प्रेमी बनें ।

६ यशोधरचरित्र ।

सूरतसे श्रीयुत मूलचन्द कसनदासजी कापड़ियाने गुजरातीमें एक सस्ती जैनग्रन्थमाला निकालनेका प्रारंभ किया है जिसका यह दूसरा पुष्प है । इसका मूल्य चार आने है जो लागत मात्र है । कापड़ियाजीके भाई ईश्वरलालजी इसके अनुवादक हैं । इसके टाइटिल पेज पर लिखा है—“ पुष्पदन्त कविकृत हिन्दीग्रन्थपरसे अनुवादक—” और भूमिकामें लिखा है—“ वच्छराज कविकृत मूल प्राकृत परसे पुष्पदन्त कविने उसकी संस्कृत छाया की और उसका हिन्दी अनुवाद लालागिरनारीलालजीने प्रकाशित किया और उसका यह गुजराती अनुवाद है ।” इससे अनुवादक महाशयके प्रमादका खासा पता लगता है । मूल ग्रन्थ प्राकृत भाषामें है और उसके रचयिता पुष्पदन्त कवि हैं । पुष्पदन्तने वच्छराज कविके प्राचीन कथासूत्रको पढ़कर अपने प्राकृत ग्रन्थकी रचना की है । अर्थात् कविका यशोधरचरित प्राकृतमें नहीं । इस प्राकृतकी एक संस्कृत

टीका है जो संभवतः सागबाड़ेके भट्टारक शुभचन्द्रजीकी की हुई है । मूल और संस्कृत टीकापर किसीने जयपुरी भाषामें एक वचनिका लिखी थी और उसीको लाला गिरनारीलालजीने बहुत ही बुरी तरहपर खड़ी बोलीमें परिवर्तन कराके प्रकाशित कराया है जिसका यह गुजराती अनुवाद किया गया है । अनुवादकको ये सब बातें अवश्य मालूम हो जाती यदि वे थोड़ासा भी परिश्रम करते ।

७ देवकुलपाटक ।

लेखक, श्रीविजयधर्मसूरि और प्रकाशक, अभयचन्द भगवानदास गाँधी । इस छोटीसी २४ पृष्ठकी पुस्तकमें देवकुलपाटकका और उसके मन्दिरों तथा प्रतिमाओंका ऐतिहासिक विवरण है । देलबाड़ा या देवलबाड़ा देवकुलपाटकका अपभ्रंशरूप है । इसे आजकल देलबाड़ा या आबूजी कहते हैं । वहाँके श्वेताम्बर सम्प्रदायके मन्दिरोंमें जो शिलालेख हैं वे सब इसमें संग्रह कर दिये गये हैं । लेख प्रायः चौदहवीं शताब्दिके पछिके हैं । इस समय प्रत्येक तीर्थस्थान और देवालयके इसी प्रकारके लेखसंग्रह प्रकाशित होनेकी आवश्यकता है । तीर्थक्षेत्रकमेटीका ध्यान इस ओर जाना चाहिए । पुस्तक मुफ्तमें बाँटी गई है, और यशोविजयग्रन्थमाला आफिस खारगेट, भावनगरसे मिलेगी ।

८ पाटलिपुत्रका विशेषाङ्क ।

पटनेका पुराना नाम पाटलिपुत्र है । अतः पटनेसे इसी ऐतिहासिक नामपर हिन्दीका एक साप्ताहिक पत्र निकलने लगा है । पाटलिपुत्रको निकलते हुए दो वर्षसे अधिक हो गये । उसके उत्साही संचालकोंने गत माघमासमें पटना हाईकोर्ट तथा हिन्दू विश्वविद्यालयके उपलक्षमें पाटलिपुत्रका यह विशेषाङ्क प्रकाशित किया था । हमें खेद है कि हम बहुत बिलम्बसे लगभग ५ महीनेके बाद इस अंकके विषयमें अपनी सम्मति लिख सके हैं । जैनमित्रके साइजसे कुछ बड़े ७२ पृष्ठोंपर यह छपा है । कागज

बढ़िया आर्टपेपर हैं। चित्रोंकी संख्या ५० से ऊपर है। छपाई दर्शनीय हुई है। लेख और कविताओंकी संख्या २७ है। पाठलिपुत्र और विहारसे सम्बन्ध रखनेवाले ऐतिहासिक लेख कई हैं और वे बड़ी खोजसे लिखे गये हैं। अधिकांश चित्र प्राचीन इमारतों और मूर्तियों आदिके हैं। लेखोंके संग्रह करनेमें इस बातका ध्यान रक्खा गया है कि वे विशेषतः बिहार और बिहारियोंसे सम्बन्ध रखनेवाले हों। कई लेख बहुत ही महत्त्वके हैं और बड़े बड़े प्रतिष्ठित पुरुषोंके लिखे हुए हैं। कवितायें कई हैं; परन्तु एकाधको छोड़कर प्रायः निरी तुकबन्दियाँ हैं।

हिन्दी पत्रोंके अभीतक जितने विशेषाङ्क निकले हैं, हमारी समझमें यह उन सबसे अधिक सुन्दर और बहुमूल्य है। मूल्य लिखा नहीं, परन्तु रुपये बारह आनेसे कम न होगा। हिन्दीके प्रेमियोंको इसकी एक एक प्रति अपने संग्रहमें अवश्य रखना चाहिए।

९ शिक्षाका आदर्श और लेखनकला ।

लेखक और प्रकाशक, स्वामी सत्यदेव परिव्राजक। पृष्ठ संख्या १०९। मूल्य पाँच आने। मिलनेका पता, सत्यग्रन्थमाला आफिस जानसेनगंज इलाहाबाद। यह बड़ी खुशीकी बात है कि हिन्दी सहित्यमें नये जोशकी बिजली फूँकनेवाले सत्यदेजीने लगभग दो वर्षके बाद अब फिरसे पुस्तकें लिखना शुरू कर दिया है। यह आपकी व्याख्यानमालाकी पहली संख्या है। इसमें आपके दो व्याख्यान हैं। हमने दोनोंहीको आद्यन्त पढ़ा। 'लेखनकलामें' लेखोंका महत्त्व, लेखकोंके भेद, उनके उद्देश्य, कर्तव्य आदिपर विचार किया गया है, और वर्तमान लेखकोंकी बड़ी कड़ी समालोचना की गई है—खूब खरी खरी सुनाई गई हैं। शिक्षासम्बन्धी व्याख्यानमें बतलाया है कि जो शिक्षा शारीरिक, आर्थिक, मानसिक और आर्थिक स्वतंत्रता देती है, वही सच्ची शिक्षा है। हमारे देशमें इस प्रकारकी शिक्षाका प्रायः अभाव है। न

यहाँ आधुनिक अँगरेजीशिक्षासे वास्तविक शिक्षित तैयार होते हैं और न प्राचीन संस्कृतशिक्षासे। अँगरेजी स्कूल और कालेज गुलाम, खुशामदखोर, अपने भाइयों पर जुल्म करनेवाले, आरामतलब, दुर्बल स्वार्थी पुरुष तैयार करते हैं और संस्कृतकी संस्थायें वर्तमान देशकालसे अनभिन्न घोंघा पण्डित तैयार करती हैं। संस्कृत शिक्षाके सम्बन्धमें विचार करते हुए कहा गया है— "हमारे देशका करोड़ों रुपया संस्कृत पाठशालाओंमें खर्च किया जाता है, पर वहाँसे शिक्षा पाये हुए हमारे देशबन्धु शिक्षाके किसी अंगकी पूर्ति नहीं करते। पिछले हजार डेढ़ हजार वर्षका इतिहास हमको इस बातकी सूचना देता है कि जिस प्रकारकी पुरानी शिक्षापणाली पाठशालाओंमें प्रचलित है उसके द्वारा हमारा जातीय जीवन स्वाभाविक ढंगसे विकसित नहीं हो सकता। पाठशालाओंके संस्कृत पढ़े हुए विद्यार्थी आत्मिकबलसे हीन, संकुचित विचारोंमें पड़े हुए अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। बड़े बड़े दिग्गज विद्वान् धाराप्रवाह संस्कृत बोलनेवाले, यह नहीं जानते कि उनके जीवनका उद्देश्य क्या है? शासन किसको कहते हैं? भारत निर्धन क्यों हो रहा है? जापानने उचाति कैसे की? अमेरिकाकी तिजारतका भारतपर प्रभाव क्यों पड़ता है? इंग्लिस्तानकी शासनपद्धति क्या है? भारतीय समाजमें फूट होनेका कारण क्या है? ऐसे ऐसे आवश्यक प्रश्नोंके विषयमें वे कुछ नहीं जानते। अलबत्ता न्यायके अवच्छेदकावच्छिन्न और व्याकरणकी फिक्रकाओंमें सिर पटकना खूब जानते हैं। जो दशा यूरोपके विद्वानोंकी १४-१५ वीं शताब्दियोंमें थी, वही दशा आज हमारे संस्कृत विद्वानोंकी है। यूरोपके ईसाई पादरी उन दिनों 'सुईकी नोक पर कितने फरिश्ते बैठ सकते हैं?' ऐसे जटिल प्रश्नोंपर महीनों शास्त्रार्थ किया करते थे; परन्तु अपनी उस मूर्खतासे यूरोपके लोग अब

निकल गये। उन्होंने शिक्षाके उद्देश्यको धीरे धीरे समझना शुरू किया और आज यूरोप शिक्षाकी उन्नत अवस्थामें हैं। इसके विपरीत हमारे संस्कृतके विद्वान्, 'पत्राधारे घृतं घृताधारे पत्रम्' धी पत्रके ऊपर है या पत्रा धीके ऊपर है? ऐसे प्रश्नोंके हल करनेमें लगे हुए हैं। भला कहिए देशकी उन्नति हो तो कैसे हो? आजसे ५०० वर्ष पहले जो हमारी आवश्यकतायें थीं वे आज नहीं हैं। आजसे ५० वर्ष पहले जो देशकी दशा थी वह अब नहीं है। हमको देशकालके अनुसार अपनी आवश्यकताओंको समझ शिक्षाका प्रबन्ध करना है। आज भारत पुराने दो हजार वर्ष पहलेका भारत नहीं है। आज यदि अमेरिकामें रुईकी फसल मामूलीसे अधिक होती है तो उसका प्रभाव भारतवर्ष पर पड़ता है! आज हमारा सम्बन्ध संसारके सभ्य देशोंसे हो गया है। हमारा मरना जीना इसी पर निर्भर है कि हम दूसरी जातियोंके नये वैज्ञानिक आविष्कारोंसे परिचित हों और अपनी शिक्षाप्रणालीको आधुनिक कला कौशलके अनुसार बना डालें। पुराने जर्जर हथियारोंसे काम नहीं चलेगा। अब हमको आँखें खोलकर चलना चाहिए। यदि संस्कृत पाठशालाओंमें बराबर नई आवश्यकताओंके मुताबिक ग्रन्थ पढ़ाये जाते तो आज हमारी यह दुर्दशा कदापि नहीं होती!" अँगरेजी शिक्षाके विषयमें कहा है:—“पिछले १०० वर्षोंका अनुभव हमें बतलाता है कि जिस ढंगकी अँगरेजी शिक्षा भारतवर्षमें प्रचलित है उससे कभी देशका कल्याण नहीं हो सकता। अँगरेजी स्कूलोंमें शिक्षा पाये हुए लाखों भारतीय आज गवर्नमेंटके भिन्न भिन्न विभागोंमें नियुक्त हैं, और हजारों रेलवे कर्मचारियोंका काम करते हैं। इन शिक्षित लोगोंसे देशका क्या उपकार होता है? देशके अनपढ़, इन अँगरेजी शिक्षितोंके हाथसे जाहि त्राहि कर रहे हैं। स्टेशनोंपर बाबू लोग

किस निर्दयतासे तीसरे दर्जेके मुसाफिरोंको लूटते और कष्ट देते हैं! अदालतोंके मुहरिर गरीब किसानोंके साथ कैसा अत्याचार करते हैं! जिधर देखो उधर ही अँगरेजी शिक्षितोंके हाथसे भारतजनता अत्यन्त दुःखी है। वे अपने दूसरे जाहिल देशबन्धुओंको घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं और उनके साथ पशुओंसे बद्तर व्यवहार करते हैं। दूसरी ओर करोड़ों अशिक्षित इन बाबुओंपर तनिक विश्वास नहीं करते, वे इनको ठग और मक्कार समझते हैं।” थोड़ी सी अँगरेजी पढ़ा हुआ लड़का अपनी भाषा भेष तथा भावसे घृणा करने लगता है। उसके लिए अँगरेजी बोलना और अँगरेजी सभ्यताकी नकल करना ही शिक्षाका आदर्श है। कोट पतलून पहन गलेमें कुत्ते जैसा पट्टा डाल मुँहमें चुनरु ले, अपने भाइयोंसे घृणा करना ही शिक्षाकी सीढ़ीपर चढ़ना समझता है। अपनी भाषा तो उसे अच्छी लगती ही नहीं, और न अपने प्राचीन ऋषि मुनि उसकी आँखोंमें जँचते हैं। उसके लिए तो अच्छा बूट, सूट, अच्छी गिटपिट और किसी दफ्तरमें नौकरी ही स्वर्गीय जीवन है। रुपयेके लिए घृणितसे घृणित कार्य करनेको वे उद्यत हैं। नौकरीके लिए यदि इनको अपने देशबन्धुओंका गलाभी काटना पड़े तो उसको ये लोग ड्यूटीके नामसे पुकारते हैं और तनिक नहीं सोचते कि अँगरेजीके इस श्रेष्ठ शब्दका अर्थ क्या है। वे श्याओंकी तरह धनके लिए शरीर और आत्माको बेचना ही इनके लिए ड्यूटी है। हम लारखबार ऐसी शिक्षाको धिक्कारते हैं। अपने देशकी ममता छोड़, प्यारे देशबन्धुओंसे पशुपनका व्यवहार कर, प्यारी मातृभाषासे मुँह मोड़ना, तथा अपने देशके पहिरावसे घृणाकर, अपने पूर्वजोंको तुच्छ दृष्टिसे देखना, यदि ये ही इस अँगरेजी शिक्षाके फल हैं तो हम इसको दूरहीसे नमस्कार करते हैं।” इस बानगीसे पाठक इस पुस्तकका अभिप्राय समझ सकते हैं।

अच्छी पुस्तक है । इसका खूब प्रचार होना चाहिए । कमसे कम हमारी शिक्षासंस्थाओंके चलाने-वालकोंको तो इसका पाठ अवश्य करना चाहिए ।

१० नाममाला ।

महाकवि धनंजयका बनाया हुआ यह एक २०० श्लोकोंका छोटासा कोश है । साथ ही ४५ श्लोकोंका एक नानार्थ कोश है । जो विद्यार्थी अमरकोश जैसे बड़े कोश कण्ठ नहीं कर सकते वे इसे कण्ठ करके कोशका काम निकाल सकते हैं । इसे पं० धनश्यामदासजीजैनकृतसरलहिन्दी अर्थसहित श्रीयुत बंशीधरजी मास्टर ललितपुर (झाँसी) ने प्रकाशित कराया है । पुस्तकके अन्तमें शब्दोंकी अनुक्रमणिका दे दी गई है, जो बहुत उपयोगी है । पुस्तकमें छोटे साइजके १०० पृष्ठ हैं और मूल्य आठ आने है ।

११ भारतीय शासन ।

लेखक और प्रकाशक, बाबू भगवानदासजी महेसरी, शीशमहल मेरठ । पृष्ठ संख्या १८० । मूल्य सात आने । यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि हिन्दीके लेखकोंकी प्रवृत्ति राजनीतिसम्बन्धी पुस्तकें लिखनेकी ओर भी होने लगी है । यह एक ऐसा विषय है जिसका जानना प्रत्येक पढ़े लिखे भारतवासीके लिए आवश्यक है । हिन्दीसमाचार-पत्रोंके पाठकोंमें फी सदी ५०-६० पाठक ऐसे होंगे जो राजनीतिसम्बन्धी लेखोंको पढ़ते हैं; परन्तु उनके पूरे मर्मको नहीं समझ सकते । वे नहीं जानते कि अँगरेज सरकार हमारे देशका शासन-किस ढँगपर करती है और इस कारण शासन-सम्बन्धी गुणदोषोंकी चर्चा उनके लिए कठिन हो जाती है । इस पुस्तकसे हिन्दी पाठक अपनी बड़ी भारी अज्ञानताको बहुत कुछ दूर कर सकेंगे । वे जानेंगे कि विलायत सरकार (होम-गवर्नमेंट) क्या काम करती है, उसमें काम करनेवाले अधिकारी

कौन कौन हैं, उनके अधिकार क्या हैं; और भारतसरकारके साथ उनका क्या सम्बन्ध है, बड़े-लाटकी कौंसिल क्या करती है, उसके काम करनेका ढंग क्या है, बड़े-लाटके अधिकार क्या हैं, प्रान्तीय सरकारें कौन कौन हैं, उनके शासकोंके अधिकार क्या हैं, जिलोंका शासन कैसे होता है, म्यूनीसिपालिटियाँ, देहाती बोर्ड, आदिका स्वरूप क्या है, सरकारी आयन्यय, देशीरियासतें, फौज और पुलिस, न्यायविभाग, जेल, शिक्षाप्रचार, स्वास्थ्यरक्षा और रेल, नहर सड़कें आदि सार्वजनिक कार्य कैसे चलते हैं तथा महाराणी विकटोरियाने हमें क्या क्या वचन दिये थे । इस पुस्तकके पढ़ लेनेसे उक्त सब बातोंका साधारण ज्ञान हो जायगा और पाठक राजनीतिक चर्चामें प्रवेश करनेके अधिकारी हो जायँगे । लेखक महाशयने इस पुस्तकको लिखकर हिन्दीभाषाभाषियोंका बहुत उपकार किया । इसके लिए आप धन्यवादके पात्र हैं । पुस्तकका मूल्य अपेक्षाकृत कम रक्खा गया है । भाषा सरल और सबके समझमें आने योग्य है । छपाई और कागज आदि सब अच्छे हैं ।

१२ नीतिशतक ।

भर्तृहरिका नीतिशतक संस्कृत साहित्यकी एक बहुत ही बहुमूल्य वस्तु है । हिन्दीमें इसके अनेक गद्यपद्य अनुवाद हो चुके हैं; परन्तु जहाँ तक हम जानते हैं अभीतक इसका बोलचालकी भाषामें कोई पद्यानुवाद नहीं हुआ था । हिन्दीके सुपरिचित कवि पं० लोचनप्रसादजी पाण्डेयने इस कमीको पूरा कर दिया । अनुवाद 'तुकहीन' है पर हमें अच्छा मालूम हुआ । मूलका भाव अनुवादमें अच्छी तरह व्यक्त होता है । अच्छा होता, यदि एक पद्यका अनुवाद अनेक पद्योंमें न करके एक ही पद्यमें किया जाता । यद्यपि इसमें कठिनाई पड़ती और अनुवाद भी कुछ कठिन हो जाता,

परन्तु कविताके ' थोड़े शब्दों में बहुत कहने ' के गुणकी रक्षा हो जाती। पद्यके नीचे गद्यमें भी मूलका अर्थ लिखा गया है और हमें उसमें कोई दोष नजर नहीं आया। इसके साथ ही पं० सरवाराम दुबे, बी. ए. बी. एल. का अँगरेजी अनुवाद भी छपा है जो शायद अँगरेजी पढ़नेवाले विद्यार्थियोंके लाभके लिए लिखा गया है। इस पुस्तकके प्रकाशक 'मिसर्स हरिदास एण्ड कम्पनी, हेरिसन रोड कलकत्ता' हैं। छपाई अच्छी है। मूल्य आठ आने।

१३ जीवनी शक्ति।

अनुवादक पं० ज्वालादास शर्मा। प्रकाशक हरिदास एण्ड कम्पनी कलकत्ता। मूल्य पाँच आने। यह बंगालके सुप्रसिद्ध डाक्टर प्रतापचन्द्र मजूमदार एम. डी. की लिखी हुई बंगला पुस्तकका अनुवाद है। हमने इसे बंगलामें पढ़ा है। बड़ी ही अच्छी पुस्तक है। दीर्घ जीवन प्राप्ति करनेके लिए शारीरिक और मानसिक शक्तियोंकी रक्षा और सदुपयोग किस प्रकार करना चाहिए, इसका इसमें सर्व साधारणके समझनेमें आने योग्य वर्णन किया गया है। स्नान, आहार, कसरत, चिकित्सा और औषधसेवन, अनेक तरहकी चिन्तार्ये और भावनार्ये, दीर्घजीवनसे लाभ, आदि कई अध्यायोंमें पुस्तक विभक्त है। अनुवाद भी अच्छा हुआ है। इस प्रकारकी पुस्तकोंके प्रचारकी बहुत आवश्यकता है।

१४ शारदा।

अनुवादक पं० शिवसहाय चतुर्वेदी, प्रकाशक हिन्दीहितैषी कार्यालय, देवरी (सागर), पृष्ठसंख्या ५०। बंगलाके प्रसिद्ध उपन्यासलेखक शिवनाथ शास्त्रीके ' मेजबान ' नामक उपन्यासका यह परिवर्तित अनुवाद है। इसका पिछला भाग जो दुःखान्त था सुखान्त कर दिया गया गया है। एक गार्हस्थ्य चित्र है। स्त्रियोंके लिए उपयोगी और शिक्षाप्रद है। छपाई अच्छी है। मूल्य छह आने।

१५ भावविलास और देवशतक।

प्रकाशक, मुंशी गोविंदशरण सरदार, महकमे अपील, जयपुर। ' हिन्दीनवरत्न ' के लेखकोंने देवकविको हिन्दीके नौ सर्वश्रेष्ठ कवियोंमें गिनाया है और उनकी रचनाकी बहुत प्रशंसा की है। यह ग्रन्थ उन्हीं देवकविका बनाया हुआ है। भावविलासमें शृंगाररसके समस्त भाव-नायक नायिका भेद अलङ्कार आदि-वर्णित हैं और शतकमें ब्रह्म, तत्त्व, आत्मा आदिके विचार हैं। यह पुरानी ब्रजभाषाकी कविता है। जो लोग इसे समझते हैं और शृंगाररसके रसिक हैं उन्हें अवश्य ही इसके पढ़नेमें आनन्द आयगा। कविता अच्छी है पर इतनी अच्छी नहीं कि उसके बलसे देवमहाकवियोंकी श्रेणीमें बिठाये जा सकें। देवशतककी कवितामें गंभीरता और तत्त्वज्ञता बहुत कम है जो उसके विषयोंके लिहाजसे होनी चाहिए थी। पुस्तकका पूरा अच्छी तरह नहीं देखा गया और छपाई तो इतनी भद्दी है कि आजकलके सौन्दर्यप्रेमी पाठक शायद ही इसे पसन्द करें। बड़े साइजके ११४ पृष्ठोंकी पुस्तकका मूल्य पाँच आने बहुत कम है।

१६ व्याख्यानसाहित्यसंग्रह (गुजराती)।

लेखक, मुनिराज श्रीविनयविजयजी और प्रकाशक, देवचन्द दामजी सेठ, भावनगर। मूल्य ढाई रुपया। लेखक महोदयने इसे सात वर्षके सतत परिश्रमसे तैयार किया है! इसमें व्याख्यानोका तो नहीं व्याख्यानोके उपयोगमें आनेवाले सैकड़ों विषयोंका और अनेक ग्रन्थोंसे लिये हुए हजारों श्लोकोंका संग्रह है। संग्रहमें और गुजराती विवेचनमें कोई विशेषता नहीं। प्रारंभमें लेखक, मुनि आत्मारामजी और सेठ मकनजी कानजीके चित्र तथा चरित्र हैं जो आज कलके समयमें प्रसिद्धिके लिए बहुत ही आवश्यक समझे जाते हैं और जिन्हें उदासीन जैन साधु भी बुरा नहीं समझते हैं।

१७ सत्याग्रहका इतिहास ।

लेखक, श्रीयुत भवानीदयालजी नेटाल (आफ्रिका) और प्रकाशक, वाबू द्वारकाप्रसादजी सम्पादक नवजीवन, इन्दौर केम्प । मूल्य डेढ़ रुपया । दक्षिण आफ्रिकाके भारतवासियोंके कष्टोंको दूर करनेके लिए महात्मा गाँधीने जो सत्याग्रह या निःशस्त्रप्रतीकार शुरू किया था, उसका प्रारंभसे लेकर अबतकका इतिहास इस पुस्तकमें लिखा गया है । बड़ी भारी विशेषता यह है कि इस इतिहाससे सम्बन्ध रखनेवाले सैकड़ों स्त्रीपुरुषोंके चित्र—जिनकी संख्या ६० के लगभग है—इस पुस्तकमें दे दिये गये हैं और यह बड़े भारी अर्थव्ययका काम है । प्रत्येक भारतवासीको यह पुस्तक पढ़ना चाहिए और विदेशोंमें अपने भारत भाईयोंकी जो दुर्दशा होती है उससे परिचित होना चाहिए । पुस्तककी छपाई अच्छी है, परन्तु बँधाई इतनी खराब है कि पुस्तक पूरी भी नहीं पढ़ी जाती है और पत्र अलग अलग हो जाते हैं । ऐसी अच्छी पुस्तककी यह त्रुटि बहुत खटकती है ।

१८ महाकवि गालिब और उनका

उर्दू काव्य ।

लेखक, पं० ज्वालादत्त शर्मा और प्रकाशक, हरिदास एण्ड कम्पनी, कलकत्ता । पृष्ठसंख्या १०२ । मूल्य पाँच आने । उर्दूका पद्य-साहित्य बहुत बड़ा चढ़ा है । उसे उत्तमोत्तम रचनाओंसे पुष्ट करनेवाले कई नामी कवि हो गये हैं । मिर्जा गालिब भी उनमेंसे एक है । संस्कृत साहित्यमें जो स्थान माघका है, वही उर्दूमें गालिबका है । फारसीके तो आप महाकवि थे । ईस्वी सन् १८६९ में आपकी मृत्यु हुई । इस पुस्तकमें लेखक महाशयने आपका और आपकी रचनाकी खूबियोंका दिग्दर्शन कराया है और अन्तके लगभग ४० पृष्ठोंमें आपका उर्दू काव्य हिन्दीअनुवादसहित दे दिया है । हिन्दीमें शायद यह पहली पुस्तक है जिसमें दूसरी भाषाके किसी कविका

इस ढंगसे परिचय कराया गया हो । इसके लिए लेखक महाशय धन्यवादके पात्र हैं । अच्छा हो यदि आप इसी प्रकार उर्दूके अन्यान्य कवियोंका भी हिन्दीके पाठकोंको परिचय करा दें । लेखक उर्दू फारसीके पण्डित हैं । इस लिए उन्होंने उर्दू फारसीके ऐसे बहुतसे शब्दोंका अर्थ बतलानेकी जरूरत नहीं समझी है, विशेष करके प्रारंभके २८ पृष्ठोंमें—जिन्हें हम जैसे उर्दूफारसी—शून्य लोग बिलकुल ही नहीं समझ सकते हैं । आशा है पण्डितजी अपने आगामी निबन्धोंके लिखते समय इस ओर ध्यान देंगे । काव्यमर्मज्ञोंको यह पुस्तक अवश्य पढ़ना चाहिए ।

१९ कुमार देवेन्द्रप्रसादजीकी पुस्तकें ।

१ सेवाधर्म, २ न्यायावतार, ३ Jainism not Atheism and The six Dravyas of Jain Philosophy, ४ विश्वतत्त्व और ५ सार्वधर्म । पहली पुस्तक प्रेमोपहारसीरीजका प्रथम पुष्प है । छोटीसी ६४ पृष्ठ (डबल क्राउन ३२ पेजी) की पुस्तक है । मूल्य वगैरह कुछ लिखा नहीं । विश्वसेवाके सम्बन्धमें बहुत अच्छे अच्छे विचार संग्रह किये गये हैं जो हृदयमें लिख रखने योग्य हैं । दूसरी पुस्तकमें आचार्य सिद्धसेन दिवाकरका मूल न्यायावतार—जिसमें कि केवल ३२ श्लोक हैं—उसका महामहोपाध्याय डा० सतीशचन्द्र विद्याभूषण एम. ए. का किया हुआ अँगरेजी अर्थ और संभवतः चन्द्रप्रभसूरिकृत संस्कृत टीका (न्यायावतारविवृतिः) है । प्रारंभमें अँगरेजी भूमिका है । न्यायावतार बहुत ही महत्त्वका और प्रसिद्ध ग्रन्थ है । विद्याभूषण महाशय इसे सबसे पहला जैनन्यायग्रन्थ बतलाते हैं । इसके एक श्लोक पर हम अपने समाजके पण्डितोंका ध्यान आकर्षित करते हैं:—

आप्तोपज्ञमनुल्लङ्घ्यमद्दृष्टेष्टविरोधकम् ।
तत्त्वोपदेशकृत सार्वं शास्त्रं कापथघट्टनम् ९

ठीक यही श्लोक आचार्य समन्तभद्रके रत्न-करण्ड श्रावकाचारमें भी है। इस बातका पता लगानेकी जरूरत है कि यह रत्नकरण्डमें क्षेपक है उद्धृत है, अथवा रत्नकरण्ड परसे न्यायावतारमें उद्धृत किया गया है। यह 'दि लायब्रेरी आफ जैन लिटरेचर' की दूसरी पुस्तक है। मूल्य इसका चार आने है। तीसरी पुस्तक अँगरेजीमें है और मि. एच. वारनकी लिखी हुई है। इसके पहले निबन्धका हिन्दी अनुवाद हितैषीमें 'जैनधर्म नास्तिक नहीं है' के नामसे प्रकाशित हो चुका है। यह सेठ नगीनदास और माणिकलालकी ओरसे मुफ्त बाँटी गई है। ४ विश्वतत्त्व और ५ सार्वधर्म ये दो चार्ट या नकशे हैं जो दीवाल पर चिपकाने या टाँगनेके कामके हैं। पहलेमें जीव अजीव आदि तत्त्वोंके तमाम भेद प्रभेद बतलाये हैं और दूसरेमें निश्चय और व्यवहार धर्मके सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र आदि भेद और उपभेद दिखलाये गये हैं। इनसे जैनदर्शनकी स्थूल रचना समझमें आजाती है। पहलेका मूल्य तीन आने और दूसरेका चार आने है। पुस्तकों और चार्टोंकी छपाई आदि बहुत सुन्दर है। इस काममें प्रकाशक महाशय सिद्धहस्त हैं मिलनेका पता—दि सेन्ट्रल जैन पब्लिशिंग हाउस, आरा।

२० सन्तान-पालन।

अनुवादक, बाबू शिवजीलाल काला। प्र०, वैद्य शंकरलाल हरिशंकर, मुरादाबाद। प्रसिद्ध जलचिकित्सक डा० लुई कूने साहबकी अँगरेजी पुस्तकके आधारसे यह लिखी गई है। बच्चोंका पालन पोषण किस तरह करना चाहिए और उनका खानपान कैसा होना चाहिए, आदि बातोंपर बहुत ही अच्छे विचार लिखे गये हैं। जो लोग बाल-बच्चोंवाले हैं, उन्हें इसे एकबार अवश्य पढ़ जाना चाहिए। ३६ पृष्ठकी पुस्तकका मूल्य चार आने अधिक है।

२१ भारतीय शतक।

ले०, मुंसिफसिंह यादव। प्र०, ब्रह्मचारी नरेन्द्र यादव, इटौली पो० शिकोहाबाद (मैनपुरी)। मू०

डेड़ आना। सौ पयोंकी पुस्तक है। भारतकी वर्तमान दशा पर बहुत कुछ कहा गया है जो पढ़नेवालोंपर प्रभाव डालेगा। कविता अच्छी है।

२२ महात्मा टाल्स्टायके लेख।

प्रकाशक, ग्रन्थप्रकाशकसामिति पत्थरगली, काशी। रूसके सुप्रसिद्ध विद्वान् महर्षि टाल्स्टायके १ लोग नशा क्यों करते हैं, २ उद्योग और आलस्य, ३ शिक्षणसम्बन्धी पत्र, ४ धर्म और बुद्धि, इन चार महत्त्वपूर्ण लेखोंका संग्रह है। मू० चार आने।

२३ विमलविनोद।

स्वामी दयानन्द सरस्वतीका उपदेश।

लेखक, एम्. बी. मोक्षाकर और प्रकाशक, शेठ जवाहरलाल जैनी, सिकन्दराबाद। मूल्य दस आने। मिलनेका पता—आत्मानन्दजैनपुस्तक-प्रचारक मण्डल, रोशन मुहल्ला, आगरा। यह पुस्तक हमारे पास कई महीनोंसे पड़ी है। हमने कई बार चाहा कि इसको पढ़ जायँ और देखें कि इसमें क्या लिखा है; परन्तु ३७६ पृष्ठके पोथेको पढ़ना साधारण काम नहीं। कुछ ही पृष्ठ पढ़कर हम सन्तुष्ट हो गये। इसमें स्वामी दयानन्द सरस्वती और उनके समाजसुधारसम्बन्धी सिद्धान्तोंकी बुरी तरह मिट्टी पलीद की गई है। खूब ही जी खोलकर गालियाँ दी हैं और बड़े ही भेदे ढंगसे उनकी गलतियाँ दिखलाई हैं। सभ्यताका या भाषासमितिका जरा भी खयाल नहीं रक्खा गया है। मालूम नहीं, इस प्रकारकी पुस्तकोंको लिखकर लेखक क्या लाभ सोचते हैं। क्या कोई पुरुष अपने असत्य विचारोंको गालियाँ खाकर छोड़ देता है? गालियाँ तो उसे अपने विचारोंमें और भी पक्का करती हैं और धार्मिक द्वेषकी सृष्टि करती हैं। लेखकके विचारसे यदि आर्यसमाजके सिद्धान्त अच्छे नहीं हैं तो उन्हें युक्तिपूर्वक सभ्यताके साथ दूषित ठहराना चाहिए। इस पुस्तकको देख कर हमें बड़ा दुःख हुआ और उसने इस कारण हम पर और भी अधिक प्रभाव डाला जब हमें मालूम हुआ कि इस पुस्तकके प्रकाशक 'युक्तिमद्बचन' को मस्तक पर चढ़ानेवाले

हमारे जैनीभाई हैं और शायद एक 'मुनि महाराज' इस कार्यके अनुमोदक हैं। अभी तक हमारा खयाल था कि इस प्रकारकी पुस्तकें लिखनेमें 'आर्यसमाजी' भाई ही सिद्धहस्त हैं।

नीचे लिखी पुस्तकें धन्यवादपूर्वक स्वीकार की जाती हैं:—

- १ जैनतत्त्वमीमांसा,
- २ जैनधर्मका हृदय,
- ३ व्याख्यान मौक्तिक,
- ४ अविद्यान्धकारमार्तण्ड ।
- प्र०—आत्मानन्द-जैनट्रैक्ट-सोसाइटी, अम्बालाशहर
- ५ महाराणाप्रतापका वनवास,
- ६ प्राचीन सभ्यताकी झलक ।
- प्र०—पं० रामस्वरूपशर्मा, चन्द्रौसी यू. पी. ।
- ७ हमारा कर्तव्य—प्र०, जैनकुमारसभा, झालरा-पाटन छावनी ।
- ८ संसार और मोक्ष—प्र०, चन्द्रसेनजी जैनवैद्य, इटावा ।
- ९ ज्ञानसूर्योदय—प्र०, मूंगासिंहजी जैन, कायम-गंज (फर्रुखाबाद) ।
- १० हिन्दीजैनशिक्षा (चतुर्थ भाग)—प्र०, जैनपुस्तकप्रचारकमण्डल रोशन मुहल्ला, आगरा ।
- ११ सप्तसन्ननिषेध—प्र०, रावत शेरसिंहजी, जैन स्कूल, बीकानेर ।
- १२ जीवविचार—प्र०, आत्मानन्दजैनपुस्तक-प्रचारक मण्डल, नौवरा, देहली ।
- १३ देवाधिदेवरचना—प्र०, लालगुरुदत्तामल जैन, पो० कसूर (लाहौर) ।
- १४ भाव आवश्यक—प्र०, पारेख मोहनलाल अमृतलाल, राजकोट ।
- १५ घृतके व्यापारी और उसके सुधारके उपाय—प्र०, आर. जेठाभाई नं० २१ पोलक स्ट्रीट कलकत्ता ।
- १६ भारतीय दृश्य—प्र०, विश्वनाथ ठाकुर, थैकरस्टोर, मथुरा ।
- १७ श्रीगौतमपृच्छा—पता, मन्नालाल चोपड़ा, खतलाम ।

जैनकर्मवाद और तद्विषयक साहित्य ।

(ले०—श्रीयुत मुनि जिनविजयजी ।)

जैनधर्मकी दृष्टिमें इस जगतका कर्ता हर्ता कोई व्यक्तिविशेष नहीं है। संसारके अन्यान्य मुख्य धर्म जिस प्रकार किसी ईश्वर आदि शक्ति द्वारा इस जगतका सर्जन और संहरणादि मानते हैं वैसा जैनधर्मका सिद्धान्त नहीं है। जैन-सिद्धान्त इस जगतका सर्वथा उत्पाद भी नहीं मानता और प्रलय भी नहीं। जैन-धर्म पर्याय-रूपसे विश्वको प्रतिक्षण परिवर्तनशील मान कर भी द्रव्य-रूपसे इसे अनादि अनन्त और शाश्वत स्वीकारता है। इस लिए औरोंकी तरह इसको जगत्कर्तृत्व-धर्मवाली ईश्वरादि व्यक्तिकी कल्पना करनेकी आवश्यकता नहीं रहती। विश्वके जो विविध स्वरूप मनुष्योंको दृष्टि-गोचर हो रहे हैं और होते रहते हैं उनमें मुख्य कारण जीव और जड़की सम्मिलित-शक्ति ही है। इसी शक्तिके प्रभावसे सारे संसारमें प्रतिक्षण परिवर्तन होता रहता है। जैनतत्त्वज्ञोंने इस शक्तिको 'कर्म' संज्ञा दी है। कर्महीके कारण जग-द्वारा जीव नानाप्रकारके सुख-दुःख प्राप्त करते रहते हैं और स्थूल और सूक्ष्म जीव-योनियोंमें जन्म-मरण लिया करते हैं। प्राणियोंको शुभाशुभ कार्यमें प्रवृत्त करानेवाला भी केवल कर्म ही है और किये हुए कृत्यका यथायोग्य फल देने-वाला भी कर्म ही है। आत्मा अपने ही किये हुए कर्मके प्रभावसे इष्ट पारितोषिक प्राप्त करता है और उसी कारण अनिष्ट दण्ड भी। स्वर्ग और नरक तथा मोक्ष और संसार, जीव अपने आप ही, कर्मद्वारा प्राप्त करता है। इनकी प्राप्तिमें

अन्य किसी व्यक्तिके प्रयत्नकी जरूरत नहीं रहती । दूसरेकी कृपा प्रसन्नतासे अथवा अरुचि या उदासीनतासे आत्माके हिताहितमें किसी भी प्रकारका परिवर्तन नहीं हो सकता । जीव अपनी ही कृतिद्वारा जिन कारणोंको संचित करता है उन्हींके परिणामों-कार्योंका शुभाशुभ फल, कालान्तरमें अनुभव करता है । जगतके नाना धर्मोंसे जैनधर्म जो सविशेष भिन्न दिखाई देता है वह इसी महान् सिद्धान्तके कारणसे है ।

जैनधर्मका तत्त्वज्ञान 'कर्मवाद' के मूल सिद्धान्त पर रचा गया है । कर्मवादको जैनधर्मका मुद्रालेख मानना चाहिए । जिस प्रकार श्रीकृष्णका मुख्य प्रबोध निष्काम कर्मयोग, बुद्धदेवका समानभाव, पतंजलिका राजयोग और शंकराचार्यका ज्ञानयोगको प्रकट करनेके लिए था, वैसे ही श्रमण भगवान् श्रीमहावीरके उपदेशका लक्ष्य-बिन्दु कर्मवादको प्रकाशित करनेका था । महावीर देवने कर्मके कुटिल कार्योंका और कठोर नियमोंका जैसा उद्घाटन किया है वैसे औरोंने नहीं । भगवान् महावीरका यह कर्मवाद अनुभवगम्य और बुद्धिग्राह्य होने पर भी स्वरूपमें अत्यन्त सूक्ष्म और गहन है । इसकी मीमांसा बहुत विकट और रहस्य विशेष गंभीर है । इस विषयका सम्यग्-अवगाहन करनेके लिए शास्त्रीय-ज्ञान-सम्बन्धी योग्यताकी अपेक्षाके सिवा, इस तत्त्वके खास अनुभवी ज्ञाताकी भी आवश्यकता रहती है । केवल पुस्तकके आधार पर मनुष्य इसके स्वरूपसे यथार्थ परिचित नहीं हो सकता । यही कारण है कि बहुतसे विद्वान् जैनधर्मके सामान्य और कुछ विशेष सिद्धान्तोंको जानते हुए भी कर्मवादके विचारोंसे सर्वथा अपरिचित होते हैं । हमारे इस कथनकी सत्यताके प्रमाणमें, यह बात कही जा सकती है कि आजपर्यंत अनेक जैनैतर विद्वानोंने, जैनधर्मके भिन्न भिन्न विचारोंका

आलोचन-प्रत्यालोचन किया है, परन्तु इस कर्मवादका किसीने नाम तक भी नहीं लिया ।

जैनधर्मका यह कर्मवाद सर्वथा भिन्न अपूर्व और नवीन है । जिस प्रकार जैन बौद्ध और वैदिक धर्मके अन्यान्य तत्त्वोंका, एक दूसरेके साहित्यमें, प्रतिबिम्ब (छाया) दृष्टिगोचर होता है वैसे इस कर्मवादके विषयमें नहीं प्रतीत होता । यद्यपि

पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति, पापः पापेन ।

(बृहदारण्यक)

**कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः ।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणोगतिः ॥**

(भगवद्गीता ४, ७ ।)

**येषां ये यानि कर्माणि प्राक् सृष्ट्या प्रतिपदिरे
तान्येव प्रतिपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः ॥**

(महाभारत, शान्ति० २३१, ४८)

शुभाशुभफलं कर्म मनोवाग्देहसम्भवम् ।

कर्मजा गतयो नृणामुत्तमाधममध्यमाः ॥

(मनुस्मृति, १२, ३ ।)

इत्यादि कर्मतत्त्व प्रतिपादक विचार वैदिक साहित्यमें और

**“कम्मस्स कोम्हि कम्मदायादो कम्म-
योनि कम्मबन्धु कम्मपरिसरणो, यं कम्मं
करिस्सामि कल्याणं वा पापकं वा तस्स
दायादो भविस्सामि ।”**

(अंगुत्तरनिकाय तथा नेत्तिपकरण ।)

**‘कम्मना वत्तती लोको कम्मना वत्तती पजा
कम्मनिबंधना सत्ता रथस्सानीव यायतो ॥**

(सुत्तनिपात, वासेठ सुत्त, ६१ ।)

इस प्रकार कर्म-सत्ताको प्रदर्शित करनेवाले उद्धार बौद्ध-साहित्यमें अवश्य उपलब्ध होते हैं; परन्तु जैनधर्मके कार्मिक विचारोंके साथ इनका कोई साम्य नहीं । भगवान् महावीरके कार्मिक विचार श्रीकृष्ण और बुद्धदेवके विचारोंसे सर्वथा भिन्न स्वरूप रखते हैं ।

कितने एक आधुनिक विद्वानोंके ऐसे विचार दृष्टिगोचर होते हैं कि “ जैनधर्म और बौद्ध-धर्म कोई स्वतंत्र मत नहीं है, परन्तु वैदिकधर्महीके भेद विशेष हैं । ये दोनों धर्म वैदिक धर्महीके अपने पिताके समीपसे अपनी आवश्यकताके अनुसार विचार-संपत्तिका हिस्सा लेकर किसी कारणवश जुदा निकले हुए पुत्र समान हैं, अर्थात् ये धर्म परकीय—भिन्नजातीय न हो कर इनके पूर्ववर्ती ब्राह्मणधर्महीकी पृथक्-भूत शाखायें हैं । ”* इन विचारोंकी विशेष मीमांसा करनेका यह प्रसंग नहीं है । यहाँ हम केवल इतना ही कह कर आगे बढ़ते हैं कि ये विचार जैनसिद्धान्तोंका सम्यग् अभ्यास-विशेषावलोकन—किये बिना ही प्रदर्शित किये गये हैं,—अतएव इनमें सत्यकी मात्रा बहुत कम है । जैनधर्मके स्याद्वाद, जीववाद, कर्मवाद, और परमाणुवाद आदि अनेक प्रौढ विचार-तत्त्व हैं जिनका वैदिक-साहित्यमें कहीं पर आभास भी दृष्टिगोचर नहीं होता । यदि जैनधर्मके सिद्धान्तोंका मूलस्थान वैदिकधर्म माना जाय, तो भगवन्महावीर प्रतिपादित जैनतत्त्वोंका मूल स्वरूप वैदिकसाहित्यमें अवश्य उपलब्ध होना चाहिए; पर वहाँ उसका कोई चिह्न नहीं मिलता । जैनधर्मके उपर्युक्त अनेक वादोंको छोड़ कर केवल अकेले कर्मवादहीको लेकर विचार किया जाय, जो इस लेखका उद्दिष्ट विषय है, तो प्रतीत होगा कि जो कर्मवादविषयक साहित्य जैनसमाजमें विद्यमान है और उसमें कर्मसंबंधी जिन हजारों विचारोंका संग्रह है उसके एक भी अंश या विचारका साम्य कर सके ऐसा कोई उल्लेख वैदिक साहित्यमें नजर नहीं आता । हजारों वर्षोंके प्रचंड आघात-प्रत्याघातोंके कारण कलिकालके

* देखो, ले० श्रीयुत बालगंगाधर तिलक रचित ‘ भगवद्गीता—रहस्य अथवा कर्मयोगशास्त्र ’ (पृष्ठ ५६६)—लेखक ।

कराल गालोंमें विलीन होते होते भी जो कुछ अत्यल्प भाग, जैनधर्मके इस कर्मवादविषयक साहित्यका उपलब्ध है उसका ठीक ठीक अवलोकन करनेसे हमारे इस कथनकी सत्यताका अनुभव हो सकता है । जो कुछ कार्मिक-साहित्य इस समय विद्यमान है वह भी इतना विशाल है कि उसका यथार्थ ज्ञान प्राप्त करनेके लिए मनुष्यको अपने आयुष्यका बहुत बड़ा भाग लगाना पड़ता है । ऐसी दशामें, जैनधर्मके विचारों—सिद्धान्तोंका मूलस्थान वैदिक धर्म है, यह कथन कैसे युक्ति-युक्त माना जा सकता है ?

कुछ वर्ष पहले तो लोग जैनधर्मसे, बहुत ही अनभिज्ञ थे; परन्तु पाश्चात्य पंडितोंके प्रशंसनीय प्रयाससे अब वह दशा नहीं रही । अब बहुतसे विद्वान् जैनधर्मके स्वरूपको जानते हैं और जाननेका प्रयत्न करने लगे हैं । कई विद्वान् जैनधर्मविषयक साहित्य, इतिहास और तत्त्व-ज्ञानका आलोचन-प्रत्यालोचन करने लगे हैं । कितनी ही देश-विदेशस्थ प्राचीन साहित्य-प्रकाशक संस्थाओंकी ओरसे तथा स्वयं जैन-समाजकी ओरसे भी, जैनधर्मके कितने ही प्राचीन ग्रंथ प्रकाशित हो गये हैं और दिन प्रतिदिन विशेषतया होने लगे हैं । इससे यद्यपि अब जैनधर्म और जैनसाहित्यके ऊपर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता जाता है और जैनतर विद्वानोंकी प्रीति भी जैनधर्मकी ओर बढ़ रही है तथापि महावीर-देवका मुख्य सिद्धान्त जो कर्मवाद है उसकी ओर अभीतक विद्वानोंका चित्त आकर्षित नहीं हुआ । कारण यह है कि एक तो यह विषय ही गहन और कठिन है, दूसरा इस विषयके साहित्यका विद्वानोंको परिचय भी बहुत थोड़ा है । कर्मवादका निरूपण करनेवाला कितना साहित्य विद्यमान है और किन किन ग्रंथोंमें इसका

मुख्य विवेचन किया गया है, यह बात बहुत कम विद्वान् जानते हैं। इस लिए यहाँ पर हम उन ग्रंथोंका संक्षिप्ततया उल्लेख करते हैं जिनमें केवल कर्मसम्बन्धी ही विचारोंका विवेचन किया गया है। इससे सर्वसाधारणको इस विषयकी विशालताका भी अनुभव होगा और जो कोई इसका अभ्यास करना चाहेंगे उन्हें तत्तद् ग्रंथोंकी प्राप्तियों भी सुगमता होगी।

जैनधर्मके प्राचीन ग्रंथोंमें लिखा है कि श्रमण भगवान् श्रीमहावीरदेवने भिन्न भिन्न स्थल और समयमें कर्मतत्त्वके विषयमें जो उपदेश दिया था, उसे उनके गणधरोंने—गौतमादि प्रधान शिष्योंने—एकत्र संगृहीत किया था। इस संग्रहका नाम विषयानुसार 'कर्मप्रवाद' रक्खा था। 'कर्म-प्रवाद' शब्दका तात्पर्य व्याख्याताओंने इस प्रकार लिखा है—

“कर्म ज्ञानावरणीयादिकमष्टप्रकारं तत्प्रकर्षेण प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशादिभेदैः सप्रपञ्चं वदतीति कर्मप्रवादम्।” (नन्दीसूत्र, मलय-गिरिसूरि ।)

अथवा

“बन्धोदयोपशमनिर्जरापर्याया अनुभवप्रदेशाधिकरणानि स्थितिश्च जघन्यमध्यमोत्कृष्टा यत्र निर्दिश्यते तत्कर्मप्रवादम्।” (तत्त्वार्थराजवार्तिक, भट्टाकलङ्कदेव ।)

अर्थात् जिसमें ज्ञानावरणादि आठ प्रकारके कर्मोंके स्वभाव और काल आदि भेदोंका सविस्तर वर्णन किया गया हो, या कर्मसम्बन्धी बंधन और उदयादिका स्वरूप तथा सत्ताका जिसमें विवेचन किया गया हो, उसे 'कर्मप्रवाद' कहते हैं। यह कर्मप्रवाद बहुत विशाल था। इसका अध्ययन साधारण बुद्धिवाले मनुष्योंके लिए अशक्य था। अतिशयप्रज्ञावान् मुनि ही इसमें प्रवेश पा सकता था। इस लिए इस संग्रह-

की गणना पूर्वोंके ज्ञानमें की जाती थी। पूर्वोक्त ज्ञानको धारण करनेवाले मुनि श्रुतकेवली कहे जाते थे। अर्थात् इस कर्मप्रवादका जो पूर्ण ज्ञाता होता था वह 'सर्वज्ञतुल्य' समझा जाता था। श्रमण भगवान् श्रीमहावीरदेवके अनेक श्रमण शिष्य इस 'कर्मप्रवाद'के पारहृष्टा थे। भगवान्के निर्वाणके बाद भी कई आचार्य इसका यथेष्ट ज्ञान रखते थे। परन्तु भारतकी मध्यकालीन राजकीय और सामाजिक परिस्थितियोंके विषमसंयोगोंके कारण, भारतके अन्यान्य महान् शास्त्रोंकी तरह यह 'कर्मप्रवाद' पूर्व भी, महावीरदेवके कुछ ही सौ वर्ष बाद, नष्ट हो गया। आज इसमेंका कुछ भी प्रकरण या अंश विद्यमान नहीं है।

इस 'कर्मप्रवाद'के सिवा एक और दृशे अग्रायणी नामके पूर्वमें भी, जो विस्तारमें इससे छोटा था, कर्मतत्त्व-विषयक विचारोंका विवेचन वाला 'कर्मप्राभृत' नामका एक विभाग था। 'कर्मप्रवाद'के नष्ट हुए बाद इसी 'कर्मप्राभृत'के आधार पर कर्मसम्बन्धी मीमांसाका अध्ययन अध्यापन किया जाता था। इस प्राभृतके किसी किसी अंशको लेकर, उस समयके श्रमणाधिपोंने अल्पबुद्धि-वाले जिज्ञासुओंके उपकारार्थ स्वतंत्र रूपसे कितने ही संक्षिप्त 'प्रकरण ग्रंथ' लिखे थे। कालांतरमें यह कर्मप्राभृत भी सारे पूर्वके साथ नष्ट हो गया; परंतु इसमेंसे उद्धृत किये गये प्रकरण-ग्रंथ संक्षिप्त और सरल होनेसे श्रमणसंघमें विद्यमान रह गये। वर्तमान कालमें जो कुछ कर्मतत्त्व-विषयक साहित्य विद्यमान है वह इन्हीं प्रकरण-ग्रंथोंका बना हुआ है। पिछले आचार्योंने संप्रदायप्राप्त शिक्षण और स्वानुभव ज्ञानके आधारसे, इन्हीं ग्रंथोंको व्याख्या-विवरणादिसे अलंकृत कर इस साहित्यको यथाशक्ति पट्टावित किया है। यद्यपि विद्यमान साहित्य पूर्वकी अपे-

ज्ञा नहींके बराबर है, तथापि आजकलके मनुष्योंके लिए तो यह भी दुरवगाह्य हो रहा है।

जैनसाहित्य मुख्य दो विभागोंमें विभक्त है। श्वेताम्बर और दिगम्बर नामके दोनों संप्रदायोंका साहित्य भिन्न भिन्न है। दोनों प्रकारके साहित्यमें कर्मविषयक साहित्यके बड़े प्रौढ और महान् ग्रंथ विद्यमान हैं। श्वेताम्बर संप्रदायके बहुतसे महत्त्वके ग्रंथ तो छप कर प्रकट भी हो चुके हैं। यहाँपर हम श्वेताम्बरीय कर्मसाहित्यके प्रधान प्रधान ग्रन्थोंका संक्षेपमें उल्लेख करते हैं जिससे विद्वानोंको इस विषयका अवलोकन करनेमें सुगमता होगी।

यों तो भगवती, प्रज्ञापना, लोकप्रकाश आदि अनेक ग्रंथोंमें इस विषयका बहुत कुछ उल्लेख है परंतु जिनमें केवल कर्मविषयक ही वर्णन किया गया हो वैसे मुख्य ग्रंथ निम्नलिखित हैं:-

१-कम्मप्पयडी (कर्मप्रकृति)

श्वेताम्बरीय कर्मसाहित्यमें कम्मप्पयडीका प्रथम नाम है। यह ग्रन्थ प्राकृत भाषामें गाथा (आर्या) नामक छन्दोंमें बना हुआ है। इसकी कुल गाथायें ४७५ हैं। इसके निर्माता श्री शिवशर्म नामके आचार्य हैं। ये आचार्य कब हुए, इसका निश्चयक प्रमाण अभी तक कोई उपलब्ध नहीं हुआ। केवल इतना जाना गया है कि ये आचार्य पूर्वधर या पूर्वीय ज्ञानको धारण करनेवाले थे। यह बात इनके बनाये हुए ग्रंथोंसे जानी जाती है। इसी कम्मप्पयडीके अन्तमें एक गाथा है जिसमें लिखा है कि—

* इय कम्मप्पयडीओ

जहसुर्यं नीयमप्पमइणा वि ।

सोहियणाभोगकयं

कहंतुवरदिट्ठिवायन्नु ॥ ४७४ ॥

* इति कर्मप्रकृतितो यथाश्रुतं नीतमल्पमतिनाऽपि ।
शोधयित्वाऽनाभोगकृतं कथयन्तु वरदृष्टिवादज्ञाः ॥

अर्थ—(ग्रंथकार शिवशर्मसूरि कहते हैं कि—) इस प्रकार यह विचार-अल्पमतिवाले ऐसे मैंने जैसा सुना था वैसा कर्मप्रकृतिसे लिया-बनाया-है। दृष्टिवादके ज्ञाता ऐसे श्रेष्ठपुरुषोंको यदि, इसमें कही रखलना दिखाई दे तो उसे शुद्ध कर, औरोंके प्रति कहें-पढ़ावें। इस गाथामेंसे तात्पर्य यह निकला कि यह ग्रंथ शिवशर्मसूरिने कर्मप्रकृति नामक किसी शास्त्रीय विभागमेंसे उद्धृत किया है। कम्मप्पयडीमेंसे उद्धृत किया जानेसे इस ग्रंथका नाम भी कम्मप्पयडी पड़ गया है। अच्छा तो अब यह कम्मप्पयडी क्या चीज है सो देखें। व्याख्याकारोंने इस शब्दकी व्याख्या इस प्रकार की है—

“—दृष्टिवादे हि चतुर्दशपूर्वाणि । तत्र च द्वितीयेऽग्रायणीयाभिधानेऽनेकवस्तुसमन्विते पूर्वे पञ्चमं वस्तु विंशतिप्राभूतपरिमाणम् । तत्र कर्मप्रकृत्याख्यं चतुर्थं प्राभूतं चतुर्विंशत्यनुयोगद्वारमयम् । तस्मादिदं प्रकरणं नीतमाकुष्टमित्यर्थः । ”

(मलयगिरिसूरिः ।)

तात्पर्य यह है कि अग्रायणीनामके दूसरे पूर्वमें पाँच वस्तु (पदार्थनिरूपण) हैं, जिनमें पाँचवाँ वस्तु बीस प्राभूतों (प्रकरणों-अध्यायों) का बना हुआ है। इन प्राभूतोंमें कर्मप्रकृति नामका चौथा प्राभूत है जिसमें कर्मतत्त्वका निरूपण है। इसी कर्मप्राभूत (कर्मप्रकृति) मेंसे इस ग्रंथका भाव लिया गया है और उसे गाथाओंमें गुंथन कर यह कर्मप्रकृति प्रकरण बनाया गया है। इस कथनसे यह सिद्ध होता है कि शिवशर्म सूरि दूसरे पूर्वके ज्ञाता थे। पूर्वोंके ज्ञानका सर्वथा अभाव महावीरदेवकी १० वीं शताब्दीके अन्तमें अर्थात् विक्रम की ६ ठी शताब्दीमें हुआ था, ऐसा पुराने

ग्रंथोंमें लिखा है । * इस दृष्टिसे इस ग्रंथके कर्ता विक्रमकी ६ठी शताब्दीके पूर्व हुए होंगे ऐसा सिद्ध होता है । इस बातके सिवा और कोई ऐतिहासिक उल्लेख इनके विषयमें नहीं मिलता । इस ग्रंथपर एक पुरानी चूर्णिवनी हुई है जिसकी श्लोकसंख्या कोई ७००० प्रमाण है । यह कुछ प्राकृत और कुछ संस्कृतमें है । इसके कर्ताका नाम और समयादि अज्ञात हैं । परंतु रचनाको

* इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतार और हरिवंशपुराण आदिके अनुसार महावीरनिर्वाणके ६८३ वर्षतक अंगज्ञानकी प्रवृत्ति रही है । अन्तिम अंगज्ञानी लोहाचार्य हुए । उनके बाद विनयधर, श्रद्धित्त, शिवदत्त और अर्हदत्त ये चार मुनि ' अंगपूर्वदेशधर ' अर्थात् अंगपूर्वज्ञानके एक भागके ज्ञाता हुए । एक जगह लिखा है कि ये चारों ११८ वर्षमें हुए । यदि वह सच हो तो वीरनिर्वाणकी आठवीं शताब्दिके अन्ततक अर्हदत्त आचार्य रहे । उनके बाद अर्हद्वलि आचार्य हुए । ये ' अंगपूर्वदेशकदेशावित ' अर्थात् उस एक भागके भी एक अंशके जानकार हुए । इनके स्वर्गवासी होनेपर माघनन्दि आचार्य हुए । ये भी उतने ही ज्ञानके धारक थे । माघनन्दि जब स्वर्गगामी हो गये तब गिरिनारके निकट धरसेन नामके आचार्य हुए । इन्हें अप्रायणी पूर्वके पाँचवें वस्तुके चौथे कर्मप्राभृतका ज्ञान था । उन्होंने भूतबलि और पुष्पदन्त नामके मुनियोंको पढ़ाया और तब उन्होंने कर्मप्रकृति प्राभृतकी रचना की । इनके बाद गुणधर आचार्य हुए जिन्हें पाँचवें ज्ञानप्रवादपूर्वके दशवें वस्तुके तीसरे कषाय-प्राभृतका ज्ञान था । यद्यपि श्रुतावतारमें स्पष्ट शब्दोंमें नहीं लिखा है कि इनके बाद और कब तक पूर्वका ज्ञान रहा, तो भी ऐसा मालूम होता है कि गुणधर आचार्यके बाद ही इसका लोप हो गया होगा । यदि अर्हदत्तके बाद इन सब आचार्योंके हेतुमें २०० वर्षका समय मान लिया जाय, तो दिगम्बर सम्प्रदायके मतसे भी वीरनिर्वाणकी दशवीं शताब्दि तक पूर्वज्ञानकी परम्पराके अस्तित्वका निश्चय होता है ।

—सम्पादक ।

देख कर अनुमान किया जाता है कि विक्रमकी ९वीं शताब्दीमें यह बनाई होगी । सुप्रसिद्ध व्याख्याकार श्रीमलयगिरि सूरिकी बनाई हुई प्रथम टीका है जो इसके रहस्योंको अच्छी तरह उद्घाटन करती है । इसकी श्लोकसंख्या ८००० प्रमाण है । दूसरी टीका महोपाध्याय श्रीयशोविजयजीकी की हुई है । यह बहुत बड़ी और महत्त्ववाली है । यह चूर्णिवनी और मलयगिरि-व्याख्याको समन्वित करती है और ग्रंथके रहस्योंका मार्मिकतया निरूपण करती है । इसकी श्लोकसंख्या १३ हजारके लगभग है । इन व्याख्याओंके सिवा मुनिचंद्रसूरि (१२ वीं शताब्दी) का एक संक्षिप्त टिप्पण भी मिलता है ।

इस ग्रंथमें कर्मसम्बन्धी, बंधन, संक्रमण, उद्वर्तन, अपवर्तन, उद्दीरणा, उपशमना, निधत्ति और निकाचित इन आठ करणोंका तथा उदय और सत्ता तत्त्वोंका अपूर्व और सूक्ष्म रूपसे विवेचन किया गया है ।

२-पंचसंग्रह ।

कर्मविषयक-ग्रंथोंमें दूसरा नंबर पंचसंग्रहका है । इसके रचयिता श्रीचंद्रर्षि महत्तर हैं । ये कब हुए, इसका विशेष निर्णय अभी तक नहीं किया गया । तथापि इनके नामके साथ जो ' महत्तर ' का विशेषण लगा हुआ है उससे वि० की ७ वीं शताब्दीके आसपास होनेका अनुमान किया जाय तो असंभव नहीं होगा । चूर्णिकार श्रीजिनदास महत्तर और गोवालिय महत्तर आदि आचार्योंका इसी समयके लगभग होनेका प्रमाण मिलता है, इस लिए पंचसंग्रहकार भी इसी समयमें होने चाहिए । यह ग्रंथ कम्प्ययडीकी अपेक्षा बड़ा है । इसकी मूल गाथायें ९६३ हैं । इस पर स्वोपज्ञ (स्वयं ग्रंथकारकी बनाई हुई) वृत्ति है जिसका प्रमाण ९ हजार श्लोक है । यह टीका सर्वत्र नहीं मिलती । पाटनके प्राचीन-भाण्डगारमें

इसकी एक प्रति ताड़पत्रकी है; अन्यत्र देखनेमें नहीं आती । सर्वत्र सुलभ और विशेष प्रचलित टीका श्रीमलयगिरिसूरिकी बनाई हुई है । यह टीका बहुत बड़ी है । इसका ग्रंथप्रमाण १९००० श्लोक है । इसकी रचना बहुत सरल और स्पष्ट है । इसके सिवा, जिनेश्वरसूरिके शिष्य रामदेव (वि० १२ वीं शताब्दीका पूर्वार्ध) का बनाया हुआ संक्षिप्त टिप्पण भी कहीं कहीं दृष्टि-गोचर होता है ।

इस ग्रंथका नाम पंचसंग्रह होनेमें दो कारण हैं । एक तो इसके अंदर शतक, सप्ततिका, कषायप्राभृत, सत्कर्म और कर्मप्रकृति इन पाँच ग्रंथोंका संग्रह होनेसे यह पंचसंग्रह कहा जाता है । दूसरे, इसमें योगोपयोगमार्गणा, बंधक, बद्धव्य, बन्धहेतु और बन्धविधि इन पाँच अर्थाधिकारों—प्रकरणों—का समावेश है । इससे भी पंचसंग्रह कहा जाता है । पाँच अर्थाधिकारोंमेंसे प्रथम योगोपयोगमार्गणा-धिकारमें, जीवस्थान, गुणस्थान और मार्गणा-स्थान द्वारा प्राणियोंकी प्रवृत्ति और ज्ञानशक्तिका वर्णन किया गया है । दूसरे बन्धकाधिकारमें, कर्म बाँधनेवाले जीवोंके भिन्न भिन्न स्वरूप और उनके भेद दिखाये गये हैं । बद्धव्यप्रकरणमें जीवके बाँधने योग्य कर्मपुद्गलोंका स्वरूप निर्दिष्ट है । चौथे बंधहेतुनामक अधिकारमें कर्मबंधनके हेतुभूत मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योगोंका विवेचन है । पाँचवाँ बंधविधि नामका प्रकरण बहुत बड़ा है । सारे ग्रंथका लगभग आधा भाग इसने रोका है । इसमें कर्म-बंधके विधानोंका अनेक प्रकारसे उल्लेख किया गया है । कर्मप्रकृतिके अनेक भंगजालोंका इसमें आश्चर्यात्पादक निरूपण है ।

३—प्राचीन कर्मग्रंथपंचक ।

१ कर्मविपाक, २ कर्मस्तव, ३ बंधस्वामित्व, ४ षडशीति और ५ शतक इन पाँच ग्रंथोंका,

सामान्यतया 'कर्मग्रंथ' ही के नामसे उल्लेख किया जाता है । इन्हीं ग्रंथोंके नाम और विषयानुसार देवेन्द्रसूरिने पीछसे पाँच ग्रंथ नये बनाये हैं इस लिए ये प्राचीन कर्मग्रंथ कहे जाते हैं । इनके कर्ता भिन्न भिन्न आचार्य हैं जो जुदा जुदा समयमें हो गये हैं । इन पाँचोंके विषय पृथक् पृथक् हैं । कर्मतत्त्वविषयका अभ्यास करनेवालेको प्रथम इन ग्रंथोंका क्रमसे अध्ययन करना चाहिए । इन पाँचों कर्मग्रंथोंपर जुदा जुदा विद्वानोंके बनाये हुए अनेक भाष्य, चूर्णि, टीका, टिप्पण और विवरण विद्यमान हैं जिनका विस्तारपूर्वक वर्णन किया जाय तो एक छोटीसी पुस्तक बन जाय । हम यहाँ पर केवल उनके नाम मात्रका उल्लेख करते हैं ।

१—इन ग्रंथोंमेंसे प्रथम कर्मविपाक नामक ग्रंथके कर्ता श्रीगर्गर्षि नामके आचार्य हैं जो सुप्रसिद्ध कथा उपमितिभवप्रपंचाके रचयिता सिद्धर्षिके दीक्षागुरु थे । इस पर परमानंदसूरिकी टीका और उदयप्रभका टिप्पण बना हुआ है ।

२—कर्मस्तव नामके दूसरे कर्मग्रंथके कर्ताका नाम उपलब्ध नहीं होता । इस पर एक गोविन्दाचार्यकी और दूसरी हरिभद्र (१३ वीं शताब्दी) की टीका मिलती है । सिवा एक पुरातन प्राकृत-भाष्य और उदय-प्रभका टिप्पण भी देखनेमें आता है ।

३—तीसरे ग्रंथके कर्ताका नाम भी ज्ञात नहीं है । इस पर केवल एक हरिभद्रसूरिकी टीका मिलती है और कुछ नहीं । इसका विशेष साहित्य नष्ट हो गया । नवीन बंधस्वामित्वके रचयिता श्रीदेवेन्द्रसूरिको भी इसका विशेष प्रस्फोटन न मिलनेसे वे अपने ग्रंथ पर विस्तृत टीका नहीं लिख सके, जैसी और ४ ग्रंथों पर लिखी है ।

४—षडशीति नामक चतुर्थ कर्मग्रंथके बनानेवाले श्रीजिनवल्लभसूरि हैं जो बहुत करके नवांगवृत्ति-

कार श्रीअभयदेवसूरिके शिष्य थे। इस ग्रंथका मूल नाम तो 'आगमिक-वस्तुविचारसार' है; परन्तु संख्या (इसकी मूल गाथायें ८६ हैं) के कारण यह षडशीतिके नामसे विशेष प्रसिद्ध है। इस पर हरिभद्र, रामदेव, मलयगिरि और यशोदेव इस प्रकार ४ आचार्योंकी टीकायें हैं। इनके अतिरिक्त भाष्य, विवरण, अवचूरि और उद्धार आदि संक्षिप्त प्रबंध भी उपलब्ध होते हैं।

५-शतकके कर्ता वही शिवशर्मसूरि हैं जो कम्मपयड़ीके कर्ता हैं। यह ग्रंथ भी कम्मपयड़ीके सदृश अग्रायणी नामके दूसरे पूर्वके उक्त कर्मप्राभृतमेंसे उद्धृत किया हुआ है। इस पर प्राचीन भाष्य और विस्तृत चूर्णिके अतिरिक्त मलधारि हेमचंद्रसूरिकी विस्तृत टीका, उदयप्रभका टिप्पण और गुणरत्नसूरिकी अवचूरि भी विद्यमान है।

४-नवीन कर्मग्रंथपंचक।

ऊपर जिन प्राचीन कर्मग्रंथोंका वर्णन किया गया है, उन्हींके नाम पर श्रीदेवेन्द्रसूरिने, विक्रम संवत् १३०० के लगभग, पाँच नवीन ग्रंथ बनाये हैं। इनमें विषय भी वही है जो प्राचीनोंमें हैं। इन ग्रंथोंके कर्ताने अपनी निजकी टीकासे विभूषित कर, ग्रंथोंकी उपादेयतामें वृद्धि की है। यह टीका बहुत सरल स्पष्ट और विस्तृत है। इसमें पूर्वापरके संबंधोंका अनुसन्धान बड़ी उत्तमतासे किया है। आज कल विशेष पठन पाठन इन्हीं ग्रंथोंका प्रचलित है। इन पर पिछले विद्वानोंने, गुजराती भाषामें अनेक विस्तृत विवेचन लिखे हैं जिससे संस्कृतानभिज्ञ भी इन ग्रंथोंका अच्छी तरह परिशीलन कर सकता है।

इन पाँचों ग्रंथोंमें, कर्मोंके भिन्न भिन्न स्वरूप, उनके पृथक् पृथक् स्वभाव, अवान्तर भेदोपभेद, बंधनप्रकार, जीवके साथ बंधे हुए कर्मपुद्गलोंका स्थिति काल, कर्मबंधनके कारण कौन जीव

कैसे कर्म उपार्जन कर सकता है और उनसे किस प्रकार छुटकारा पा सकता है, इत्यादि समग्र विषयोंका अनुपम और अतिस्फुट वर्णन किया गया है।

५-सत्तरि (सप्ततिका)।

यह ६ ठा कर्मग्रंथ कहा जाता है। उपर्युक्त प्राचीन अथवा नवीन पाँचों ग्रंथोंका क्रमपूर्वक अध्ययन किये बाद इसका अध्ययन किया जाता है। इसका कोई विशेष नाम न होनेसे गाथाओंकी संख्या (७०) परहीसे इसका नाम प्रसिद्ध है। इसके बनानेवाले पंचसंग्रहकार श्रीचंद्रर्षि महत्तर हैं। इस पर सूत्रकारकी निजकी (स्वोपज्ञ) वृत्ति है जो प्राकृतभाषामें है। दूसरी टीका श्रीमलयगिरिसूरिकी की हुई है जो अच्छी सरल और विस्तृत है। मूलके अर्थोंका अनुसंधान करनेवाला नवांगवृत्तिकार श्रीअभयदेवसूरिका प्राकृत भाष्य और उस पर मेरुतुंगसूरिका संस्कृत विवेचन इस ग्रंथके विषयोंको विशेष स्फुट करता है। इनके अतिरिक्त रामदेवका टिप्पण और गुणरत्नसूरिकी अवचूरि भी उपलब्ध होती है।

६-सान्द्रशतक।

इसका मूल नाम 'सूक्ष्मार्थविचारसार' है, परंतु ऊपरके कितने एक ग्रंथोंकी तरह इसका भी नाम गाथाओंकी संख्याका सूचक पड़ गया है। इसके कर्ता जिनवल्लभसूरि हैं। इस पर एक हरिभद्रकी और दूसरी धनेश्वरसूरिकी टीका मिलती है। मुनिचंद्रसूरिकी चूर्णि तथा एक भाष्य और टिप्पण भी प्राप्त होता है।

७-संस्कृत कर्मग्रंथचतुष्क।

ऊपरके सब ग्रंथ मूल प्राकृतमें हैं, पर इनकी रचना संस्कृतमेंकी गई है। इन चारों ग्रंथोंके नाम क्रमसे ये हैं—१ प्रकृतिविक्षेप, २ सूक्ष्मा-

र्थसंग्रह, ३ प्रकृतिस्वरूपनिरूपण और ४ बंध-स्वामित्व । इनके रचयिता आगमिक श्रीजयतिलकसूरि हैं जो विक्रमकी १५ वीं शताब्दीमें विद्यमान थे । इन ग्रन्थोंपर टीका-टिप्पण कुछ नहीं हुआ ।

इन ग्रंथोंके सिवा और छोटे छोटे बहुतसे प्रकरण हैं; परंतु “हस्तिपदे सर्वे पादा निमग्नः” न्यायानुसार उनमेंके सर्व विषयोंका, इन ग्रंथोंमें समावेश हो जानेसे, हम उनका उल्लेख नहीं करते और करनेका स्थल भी नहीं है ।

इस प्रकार श्वेताम्बर-साहित्यमें कर्मविषयक ग्रंथ प्रसिद्ध और उपलब्ध हैं । इन ग्रंथोंकी कुलश्लोकसंख्या सवालारखके लगभग होगी । इतना ही साहित्य दिगम्बर-संप्रदायका भी है । गोम्मटसार आदि बड़े बड़े ग्रंथ दिगम्बर वाङ्मयकी शोभा बढ़ा रहे हैं; परंतु हमको उन ग्रंथोंका विशेष हाल मालूम न होनेके कारण यहाँपर उल्लेख नहीं किया जासका । कोई ज्ञाता उन ग्रंथोंकी क्रमवार सूची प्रकट करनेका प्रयत्न करेगा तो अवश्य प्रशंसाका पात्र गिना जायगा* । श्वेताम्बरीय कर्मग्रंथोंमेंसे बहुत ग्रंथ

♦ दिगम्बर सम्प्रदायके साहित्यमें जो कर्मविषयक अनेक ग्रन्थ हैं उनमेंसे कुछका परिचय नीचे कराया जाता है—

१ महाकर्मप्रकृतिप्राभृत—इस ग्रन्थका परिचय इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतारमें मिलता है । इसके छह खण्ड हैं, इसलिए इसे षट्खण्ड शास्त्र भी कहते हैं । इसके प्रारंभका कुछ भाग (केवल १०० सूत्र) आचार्य पुष्पदन्तका बनाया हुआ है और शेष भूतबलि आचार्यका । इसके जीवस्थान, धुल्लकबन्ध, बन्धस्वामित्व, और भाववेदना ये पाँच खण्ड छह हजार श्लोक प्रमाण हैं और छद्म महाबन्धखण्ड तीस हजार श्लोकोंमें है । इस तरह यह सम्पूर्ण ग्रन्थ लगभग ३६ हजार श्लोकोंका है ।

इस महान् ग्रन्थकी कई बड़ी बड़ी टीकायें हैं । एक टीका कुण्डकुन्दपुरनिवासी पद्मनन्दि (कुन्द-

छप गये हैं परंतु दिगम्बर साहित्यका इस विषयका गोम्मटसारको छोड़कर एक भी ग्रंथ अभी तक प्रकट नहीं हुआ । इस लिए तत्त्वरासिक और धर्मप्रेमी दिगम्बर बंधुओंका कर्तव्य है कि वे इस विषयके साहित्यको प्रकट करनेका विशेष उद्यम करें ।

कर्मतत्त्वके विषयमें दोनों संप्रदायोंका समान मत है । इसमें किसी प्रकारका विचार-भेद नहीं है । इस लिए दोनों संप्रदायोंके विद्वान्-कुन्द) आचार्यकी है जो १२ हजार श्लोक प्रमाण है । यह केवल प्रारंभके तीन खण्डोंकी है और प्राकृत भाषामें है ।

दूसरी टीका शामकुण्ड नामक आचार्यकी है । इसमें छठे महाबन्ध खण्डकी टीका नहीं की गई है । यह टीका लगभग छः हजार श्लोकोंमें है ।

तीसरी चूडामणि नामकी टीका तुम्बुलूराचार्यकी रची हुई है । यह प्राचीन कनड़ी भाषामें है और ५४ हजार श्लोकोंमें है । इसमें भी छद्म महाबन्ध खण्ड छोड़ दिया गया है । छठे खण्ड पर इन्हीं आचार्यने एक जुदी ही पञ्जिका टीका बनाई है जो ७ हजार श्लोकोंमें है ।

चौथी टीका तार्किकसूर्य समन्तभद्राचार्यकी बनाई हुई है । यह आनन्द नामक नगरमें रची गई थी । यह भी पहले पाँच खण्डोंकी है और ‘अति-सुन्दरमृदुसंस्कृत’ में लिखी गई है । इसकी श्लोकसंख्या ४८ हजार श्लोक है ।

व्याख्यापञ्जलि नामकी पाँचवीं टीका वप्पदेव-गुरुकी बनाई हुई है । यह प्राकृत भाषामें है । यह दोनों प्राभृतोंकी (कर्मप्राभृत और कषाय प्राभृतकी) संयुक्त टीका है और १४ हजार श्लोक प्रमाण है । इसमेंसे छठे महाबन्ध खण्डकी श्लोकसंख्या आठ हजार है । इसकी रचना भीमरथी और कृष्णमेणा नामकी नदियोंके बीचमें बसे हुए उत्कलिका नामक ग्रामके समर्पि अगणवल्ली नामके ग्राममें हुई थी ।

छठी टीकाका नाम धवला है । यह प्राकृत, संस्कृत और कनड़ीभाषामिश्रित टीका है । इसकी श्लोकसंख्या ७२ हजार है । इसे आचार्य जिनसेनके

नोंको चाहिए कि वे परस्पर एक दूसरेके ग्रंथों-का विचारपूर्वक परिशीलन करें और उनमें जो कुछ विशेषता दृष्टिगोचर हो उसका पृथक्करण करें। अब हमें अपने स्वाध्याय और पठनपाठनकी पुरानी पद्धतिका परिवर्तन करना चाहिए। संसार अब धार्मिक और तात्त्विक विचारोंको अन्य दृष्टिसे देख रहा है। जगतमें श्रद्धाका साम्राज्य बहुत कुछ नष्ट हो गया है और उसके स्थान पर बुद्धिका प्राबल्य बढ़ रहा है। अब प्रत्येक विचारक किसी विचारकी सत्यताको श्रद्धेयतया न मान कर बुद्धिपूर्वक

गुरु वीरसेनने माटग्रामके आनतेन्द्रके बनवाये हुए जिनमन्दिरमें बैठकर विक्रम संवत् ९०५ के लगभग बनाया है।

२ कषायप्राभृत—पाँचवें ज्ञानप्रवाद नामक, पूर्वके दश भाग हैं जिन्हें वस्तु कहते हैं। दशवैवस्तुके तीसरे प्राभृतका नाम कषाय-प्राभृत है। इसके मूल रचयिता गुणधर नामके आचार्य हैं। ये 'पूर्वाशवेदी' थे। इनका ठीक समय मालूम नहीं, अनुमानसे धरसेना-चार्यके कुछ बाद हुए हैं। मूल ग्रन्थ १८३ सूत्रगाथा और ५३ विवरणगाथाओंमें समाप्त हुआ है। इसकी भी कई बड़ी बड़ी टीकायें हैं।

पहली चूर्णवृत्ति। यह यतिवृषभ नामक आचार्यकी बनाई हुई है और सूत्ररूप है। इसकी श्लोकसंख्या ६ हजार है। यतिवृषभ आचार्य गुणधर मुनिसे कुछ ही पीछे हुए हैं। क्योंकि उन्होंने गुणधर मुनिके शिष्य नागहस्ति और आर्थमंथु मुनिसे इस विषयका अध्ययन किया था, इसका उल्लेख मिलता है।

दूसरी उच्चारणवृत्ति। इसकी श्लोकसंख्या १२ हजार है। यह उच्चारणाचार्यकी बनाई हुई है और इसीलिए इसे उच्चारणवृत्ति कहते हैं।

तीसरी वृत्ति शामकुण्ड आचार्यकी है जो लगभग ६ हजार श्लोक है। चौथी तुम्बुलुर ग्रामनिवासी तुम्बुलुराचार्यकी चूड़ामणि व्याख्या है। उन्होंने कर्मप्राभृतकी भी टीका लिखी है। दोनों टीकाओंकी श्लोकसंख्या ८४ हजार है। पाँचवीं टीका वाग्देवगुरुकी प्राकृत भाषामें

उसकी उपपत्ति पृष्ठता है। इस लिए हमें अपने सैद्धान्तिक विचारोंको बुद्धिगम्य बनानेके लिए उनका नवीन पद्धतिसे विचार और विवेचन करना चाहिए। इस पद्धतिका नाम तुलनात्मक-पद्धति है। विद्वान् लोक प्रत्येक धर्मके सिद्धान्तोंकी, एक दूसरेके सिद्धान्तोंके साथ तुलना करते हैं और किसमें कितनी विशिष्टता और सत्यता है यह ढूँढ़ निकालनेका प्रयत्न करते हैं। हम अपने जैनधर्मके सिद्धान्तोंका विशिष्टत्व, उसके सहोदर वैदिक और बौद्ध, धर्मके सिद्धान्तोंके साथ तुलना किये विना-

६० हजार श्लोकोंकी है। छठी टीका ६० हजार श्लोकोंकी वीरसेन और जिनसेन स्वामीकृत है। इसे जयधवला कहते हैं। यह प्राकृत-संस्कृत-कर्नाटक भाषामिश्रित है।

ये सब ग्रन्थ और टीकायें अलभ्य नहीं, पर दुर्लभ्य अवश्य हैं। दिगम्बरसम्प्रदायके मूडबिंद्री-नामक प्रसिद्ध तीर्थमें-जो मंगलोर जिलेमें हैं—एक सिद्धान्त-भण्डार है। उसमें धवल, जयधवल और महाधवल नामके तीन सिद्धान्त ग्रन्थ हैं। संभवतः संसार भरमें इनकी केवल यही एक एक प्रति ही अवशेष है और ऐसे लोगोंके अधिकारमें हैं जो इसका नामशेष कर डालनेके लिए उत्तारू है। इनमेंसे एक तो कर्मप्राभृतकी वीरसेनेस्वामिकृत धवला नामकी टीका है और संभवतः उसमें वृषभदेवगुरुकी व्याख्याप्रज्ञप्ति भी शामिल है। दूसरा जयधवल सिद्धान्त कषायप्राभृतके पहले स्कन्धकी चारों विभक्तियोंकी जयधवला नामकी टीका है जिसमें कषाय-प्राभृतके गुणधरमुनिकृत मूल गाथसूत्र और विवरण-सूत्र, यति वृषभकृत चूर्णिसूत्र, वृषभदेवगुरुकृत वार्तिक और वीरसेन-जयसेनकृत वीरसेनीया टीका, इतनी चीजें शामिल हैं। तीसरा महाधवल सिद्धान्त कषाय-प्राभृतकी यतिवृषभादिकृत टीकाओंका संग्रह है। कर्मप्रकृति और कषाय प्राभृतका उक्त विशाल साहित्य केवल मूडबिंद्रीमें है जिसको प्रकाशित कर डालनेकी बहुत बड़ी आवश्यकता है।

३ गोम्मटसार—कर्मसाहित्यका दूसरा प्रसिद्ध ग्रन्थ गोम्मटसार है। दिगम्बर सम्प्रदायमें इस

नहीं जान सकते । इस लिए हमारा कर्तव्य है कि हम अपने साहित्यके साथ वैदिक और बौद्ध साहित्यका भी अभ्यास करें और किसमें कितना विशिष्टत्व है उसे ढूँढ़ निकालें । धार्मिक सिद्धान्तोंका यथार्थ रहस्य, तुलनात्मक दृष्टिसे अवलोकन करनेवालोंको जितना अवगत होता है उतना औरोंको नहीं । भगवद्गीताके रहस्योंका जैसा उद्घाटन, लोकमान्य श्रीबालगंगाधर तिलकने किया है वैसा अन्य किसीने नहीं किया, ऐसा जो एकाकार उद्घोष विद्वानोंके मुँहसे निकल रहा है वह इसी पद्धतिके अभ्यास और अवलोकनका फल है । तिलक महाशयने अपने ' भगवद्गीतारहस्य अथवा कर्मयोगशास्त्र ' नामक महान् ग्रंथमें 'कर्मविपाक व आत्मस्वातंत्र्य' नामका एक प्रकरण लिखा है जो जैनकर्मवादके अभ्यासीके लिए अवश्य अवलोकनीय है ।

अब हम अपने नवशिक्षित जैनबंधुओंको

ग्रन्थका बहुत ही अधिक प्रचार है । यह प्राकृत भाषामें है । कनड़ी, संस्कृत और हिन्दीमें इसकी कई टीकायें बन चुकी हैं । इस ग्रन्थके कर्ता आचार्य नेमिचन्द्र हैं । सिद्धान्तचक्रवर्ती उनकी पदवी थी । विक्रमकी ग्यारहवीं शताब्दिके मध्यमें वे मौजूद थे । गंगवंशीय राजा राचमल्लके सुप्रसिद्ध मंत्री चामुण्डरायको अपने ग्रन्थमें उन्होंने जगह जगह आशीर्वाद दिया है । इन्हीं चामुण्डरायके लिए कहते हैं कि यह ग्रन्थ ध्वलादि ग्रन्थोंके आधारसे या उन्हींमेंसे संग्रह करके रचा गया है । इसके पहले भागका नाम जीवकाण्ड और दूसरेका कर्मकाण्ड है । जीवकाण्डमें ७३३ और कर्मकाण्डमें सब मिलाकर ९७२ गाथायें हैं । ये दोनों भाषाटीका सहित छप चुके हैं । इसका दूसरा नाम पंचसंग्रह भी है । क्योंकि इसमें कर्म-प्राभूतके जीवस्थान, शुद्धबन्ध, बन्धस्वामी, वेदानाखण्ड और वर्णाखाण्ड इन पाँच विषयोंका वर्णन है ।

४ लब्धिसार—यह ग्रन्थ भी आचार्य नेमिचन्द्रका बनाया हुआ है और प्रायः सर्वत्र मिलता है । इसमें पाँच लब्धियों तथा उपशम और क्षपक श्रेणिका वर्णन है । इसकी सब मिलाकर ६५० गाथायें हैं ।

एक सूचना करके इस लेखको समाप्त करते हैं : हमारे आधुनिक शिक्षा पाये हुए युवक केवल सामाजिक सुधारके विचारोंके पीछे घुड़-दौड़ कर रहे हैं; परन्तु उसके आगे बढ़नेका कुछ भी प्रयत्न नहीं करते । जैनदृष्टिमें समाज गौण और धर्म मुख्य है, इस विचारको हमने आज कल भुला दिया है । सामाजिक उन्नति कोई हमारे आत्मिककल्याणका अंग नहीं है, उसका अंग तो धार्मिक उन्नति है । यद्यपि हमारा व्यवहार सुसंगत रखनेके लिए समाजकी संस्कृति हमें अभीष्ट अवश्य है तथापि केवल सामाजिक सुधारहीसे धर्मको भी विशिष्टत्व आ जायगा, यह विश्वास भ्रान्तिमूलक है । हमारा धर्म, सामाजिके साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखता । यही कारण है कि भगवान् महावीरने किसी भी प्रकारके सामाजिक नियमोंका नियमन नहीं

५ क्षपणासार—इसके कर्ता आचार्य नेमिचन्द्रके समानकालीन माधवचन्द्र त्रैविद्यदेव हैं । यह संस्कृत गद्यमें है । माधवचन्द्रकी बहुतसी गाथायें गोम्मटसारमें भी शामिल हैं ।

पं० टोडरमल्लजीने गोम्मटसारकी जो विस्तृत भाषाटीका लिखी है उसमें लब्धिसार और क्षपणासार दोनोंही शामिल कर लिये गये हैं ।

लब्धिसार क्षपणासारसहित छप रहा है ।

६ पंचसंग्रह—यह धर्मपरीक्षाके कर्ता आचार्य अमितगति वीतरागका बनाया हुआ है । विक्रम संवत् १०७३ में इसकी रचना हुई है । अमितगति माथुर संघके आचार्य थे । इसकी एक प्रति हमने ईडरके भण्डारसे आई हुई स्वर्गीय सेठ माणिकचन्द्रजीके यहाँ देखी थी और उसकी केवल प्रशस्ति लिख ली थी । यह संस्कृत भाषामें है और इसका विषय वही है जो गोम्मटसारका है ।

इसके सिवाय इस विषयके अन्य ग्रन्थोंसे हम अनभिज्ञ हैं । हाँ, ऐसे बहुतसे ग्रन्थ हैं जिनका मुख्य विषय तो यह नहीं है, पर गौणरूपसे इसका खासा विवेचन मिलता है ।

—सम्पादक ।

किया । हमारे साहित्य और विचारों पर सामाजिक विषयोंका जो रंग चढ़ा है वह केवल पड़ोसीधर्मोंके कारण है । जिस प्रकार पाश्चात्य संस्कृतिकी बाहरी चमक दमकमें मुग्ध होकर भारत अपने अन्तस्तेजको भूल गया है; वैसे ही जैनसमुदायने भी हिंदूसमाजके रूढ़ीधर्मोंकी धामधूममें मोहित होकर अपने असली सिद्धान्तोंको विस्मरण कर दिया है । इसी विस्मृतिके कारण हमारा समुदाय दिन प्रतिदिन घटता घटता आज नाम मात्र रह गया है । इस लिए अब हमारा कर्तव्य है कि भूले हुए सिद्धान्तोंको फिर ताजा करें । हमें सामाजिक बन्धनोंके निकम्मे जालमें न फँस कर धार्मिक सत्योंके अगाध समुद्रमें स्वेच्छापूर्वक तैरते रहना चाहिए । इन धार्मिक सत्योंका यथार्थ स्वरूप हम तब ही समझ सकेंगे जब हमें कर्मवादके विचारोंका ठीक ठीक ज्ञान होगा । कर्मवादको समझे बिना कोई जैनधर्मका ज्ञाता नहीं कहला सकता । शमस्तु ।

सम्पादकीय नोट—कर्मसम्बन्धी सिद्धान्त दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायोंके प्रायः एकसे हैं । इनमें बहुत ही कम-नाम मात्रका-भेद है । ऐसी दशामें क्या ही अच्छा हो यदि हमारे दिगम्बर-सम्प्रदायके विद्वान् श्वेताम्बर-कर्मसाहित्यको और श्वेताम्बर सम्प्रदायके विद्वान् दिगम्बर कर्मसाहित्यको भी पढ़ें और मनन करें । हमारी समझमें इससे दोनोंको लाभ होगा । दोनों सम्प्रदायके ग्रन्थोंमें जो सूबियाँ हैं उनसे दोनों ही लाभ उठायेंगे । कमसे कम उन सज्जनोंको तो इस ओर अवश्य ध्यान देना चाहिए जो विचारशील हैं और दोनों सम्प्रदायोंके हृदयको टटोलना चाहते हैं । जब तक दोनों सम्प्रदायोंके ग्रन्थोंका परस्पर अध्ययन अध्यापन न किया जायगा, तब तक न दोनोंकी कट्टरता कम होगी और न दिगम्बर श्वेताम्बर सम्प्रदायकी भिन्नताका ऐतिहासिक रहस्य ही समझमें आयगा ।

प्रतिदान ।

[ले०—श्रीयुत पं० ज्वालादत्त शर्मा ।]

लाहोरके मुट्टीभरे बंगालियोंमें दिवाकर बाबूकी जैसी समालोचना होती है—उससे मालूम पड़ता है कि वहाँ पर उनकी प्रतिष्ठा साधारण नहीं है । धनमें तो दिवाकर बाबू बंगालियोंमें क्या अनेक पंजाबियोंमें भी बड़े हैं; पर उनकी समालोचनामें यह प्रसंग कभी न उठता था । उनकी जिन बातोंकी विशेषरूपसे समालोचना होती थी उनमें उनका स्त्रीविद्वेष, अँगरेजद्वेष और बाल्यजीवनके इतिहासको गुप्त रखनेकी चेष्टा ये प्रधान थीं । दिवाकर बाबूका सौजन्य सुप्रसिद्ध था । दानमें भी उनका मुकाबला करनेवाले बहुत कम लोग होंगे । पर अँगरेजोंके साथ व्यवहार करनेमें वे जैसी रुवाईका परिचय देते थे या किसी स्त्रिके नामोल्लेख पर जैसी विरक्ति प्रकाश करते थे उसको देखकर आदमी अनेक तरहकी बातें मनमें सोचा करते थे । यदि कोई इन बातोंका कारण उनसे पूछता था तो उनका चेहरा बहुत ही गम्भीर भाव धारण कर लेता था । लाहोर-प्रवासी उर्वर-मस्तिष्क बंगालियोंमें हरएकने एक एक थियरी (सिद्धान्त) बना रक्खी थी और दिवाकर बाबूकी अनुपस्थितिमें वे अपनी थियरीको दूसरेके मस्तिष्कमें प्रवेश करनेकी खूब चेष्टा किया करते थे । इन सब थियरीयोंमें आशुतोषकी थियरी सबसे अधिक संक्षिप्त और युक्तिपूर्ण है । वह कहता है, दिवाकर बाबू कुँआरे नहीं हैं; मालूम होता है उनकी स्त्री किसी अँगरेजके प्रेममें फँसकर उनको छोड़ गई है । इसीलिए वे अँगरेज और स्त्री-जातिसे इतनी घिन करते हैं ।

इस कुत्सित कथाके सत्य न होनेपर भी आशुतोषने इसको अभ्रान्त मान रक्खा था। दिवाकर बाबूके निराश प्रेमिक होनेमें तो किसीको सन्देह ही नहीं था। उनका विहाग जिन्होंने सुना है वे जानते हैं कि दिवाकर बाबूको सौन्दर्य परखनेकी कुछ कम क्षमता प्राप्त नहीं है। विहागकी मर्मस्पर्श लहर, मधुर झंकार, भैरवीकी आशामयी भाषा, किसी प्रेमिकके हृदयसे ही निकल सकती है—इसमें किसीको सन्देह नहीं हो सकता। इसके सिवा घर सजानेमें, बातचीतमें, हावभावमें—प्रतिपद पर मालूम होता था कि प्रौढ दिवाकरका हृदय जवानीमें प्रेमका अभिनय करके जरूर जस्मी हुआ है।

[२]

अँगरेजीमें मसल है—राजा कभी नहीं मरता। दिवाकरका भी किसीको सच्चा इतिहास मालूम होता तो वह जान पाता कि दिवाकर बाबूका हृदय सिंहासन भी बाल्य और यौवनकालमें कभी शून्य नहीं रहा। वास्तवमें बंकिम बाबूके उपन्यास पढ़नेसे बहुत पहले ही वे एक तरहसे प्रेमके पन्थमें पड़ गये थे। सबसे पहले तो काठके लाल घोड़ेसे उनका प्रेम हुआ था। उस समय उनकी अवस्था चार वर्षकी थी। उनके पिताने कलकत्तेसे उनके लिए वह काठका घोड़ा ला दिया था। बालक दिवाकर उससे रात दिन प्रेम करता था। प्रातःकाल उठकर सबसे पहले वह बागसे घास लाकर उसके सामने रखता था। बादको मासे मिठाई माँगकर उसको दिक किया करता था। दिन भर घोड़ेके साथ खेलकर रातको उसे अपनी चारपाईसे बाँधकर वह सोता था। इस तरह ६ दिन बीत जानेपर सातवें दिन एक बड़े बालकने पूछा—“दीबू, तेरा घोड़ा तैरना जानता है ?” गर्बित दिवाकरहे उत्तर दिया—“हाँ।” उसके बाद उस

बालकके कहने पर दिवाकरने घोड़ेको तालाबमें डाल दिया और जब वह घोड़ा तैर कर दिवाकरके पास नहीं आया तब बालक दिवाकर एक गहरी साँस छोड़कर एक बिल्लीके प्रेमपाशमें बद्ध होगया। बिल्लीके बाद कई तरहके पक्षियोंसे उसका प्रेम हुआ और अन्तमें विद्यालयके एक बालकके साथ उसका प्रगाढ़ प्रेम होगया। उसी समयसे उसका हृदय मधुररससे भीगने लगा। उसी समयसे वह समझने लगा कि बिना दूसरे हृदयसे मिले उसका हृदय असम्पूर्ण है। दो हृदय एक सूत्रमें ग्रथित न होनेसे मनुष्यका हृदय ज्योत्सनाहीन नीलिमाकी तरह निरर्थक और तमसावृत हो जाता है।

इन्ट्रेंस पास करनेके बाद दिवाकरको जब मित्राभियोग हुआ उस समय पास होनेकी प्रसन्नता भी उसके लिए कष्टका कारण होगई। मनके साथ अनेक तर्क वितर्क करके अपने किसी सहपाठीके परामर्शसे उसने एक सितार खरीद लिया और उसके मधुरस्वरोमें उसने अपना प्रेम अर्पण कर दिया।

[३]

यौवनके द्वारपर पहुँचते ही दिवाकर कितनी कामिनीयोंके गुणपर मुग्ध होकर एक एकको अपने हृदय—मन्दिरमें प्रतिष्ठित करके पूजा कर चुका है—इसकी इयत्ता नहीं। अन्तमें जब बी. ए. की परीक्षामें अनुत्तीर्ण होकर वह मधुपुरमें वायु परिवर्तन करनेके लिए गया उस समय उसके जीवनमें एक बड़ा भारी परिवर्तन होगया।

यह बात आजसे बीस वर्ष पहलेकी है। इस तरहके महलोंके समान मकान मधुपुरमें उस समय नहीं थे। छोटे छोटे बंगले ही वहाँपर दिखाई पड़ते थे।

दिवाकर जिस बंगलेमें रहता था उसके पास-वालेमें मूरनामके एक श्वेताङ्ग वास करते थे।

मधुपुरके चारों ओर मूरसाहबकी कोयलेकी कई खाने थीं। वृद्ध मूर स्वयं कामको न देखते थे; मधुपुरमें रहकर ही वे उनका इन्तजाम करते थे।

मधुपुरके बंगलेके बरामदेमें बैठे हुए और धूम्रपान करते हुए दिवाकर बाबूने पहले पहले युवती मिसेस मूरको जिस दिन देखा था उस दिन उसको वृद्ध मूरकी लड़की ही समझा था। कुमारीके साथ प्रेम करना कुछ बुरा नहीं—इसी लिए दिवाकर बाबू अपने चित्तको संयत न कर सका था। विदेशमें रहकर विदेशिनीके पद-लमें अपना प्रेमपूर्ण हृदय अर्पण करके दिवाकर रातको निर्जन जगहमें बैठकर मर्मस्पर्शी विहाग-रागिनी गाया करता था और अवसर मिलते ही उस लावण्यमयीकी स्निग्ध रूप राशिको देखकर अपना चित्त प्रसन्न किया करता था।

मूरकी युवती स्त्रीसे प्रेम करके दिवाकरने अपनी मूर्खताका परिचय दिया था—यह कहना बिलकुल ठीक है। जिसको पानेकी कोई आशा नहीं, जिस अग्निमें केवल जलानेकी शक्ति है, जिसमें संजीवनी शक्ति नहीं है—उसके लिए आत्मसमर्पण करना, उस बहिनमें भस्मीभूत हो जाना—पागलपन नहीं है तो और क्या है? किन्तु हम जिसे प्यार करते हैं वह यदि अपनी नील गम्भीर दोनों आँखोंसे हमको घूरा करे, देखनेके सुयोगके समय ही जो आराम कुर्सी-पर बैठ कर पुस्तक पढ़े और बीचबीचमें हमारी ओर देखकर मूडु कटाक्षपात किया करे, हम जिस समय सितारपर संगीतालाप किया करें वह यदि उस समय अपने छोटेसे बायें पैरसे ताल दे—ऐसा होनेपर यदि हम उसके प्रेममें उन्मत्त हो जायें तो भी क्या तुम हमें पागल कह सकते हो? दिवाकर जानता था कि अँगरेज रमणीकी नसनसमें रोमान्स*भरा रहता है।

* कल्पित कहानियाँ।

इसी लिए निष्कर्मा दिवाकर, उस निर्जन कुटीमें रहकर सुन्दरी श्वेतागिनीके प्रेममें उन्मत्त होकर मधुर सितारके स्वरोंमें अपने मनकी बात बताता था—इसमें विचित्रता ही क्या थी?

उसके मधुपुर पहुँचनेसे कोई डेढ़मास बाद एक दिन मूर साहबके बंगलेमें बहुत शोर मचा। बूढ़ा मूर शेक्सपियरके साईलकी तरह हाथ पाँव हिलाकर दुन्द मचा रहा था। पुलिसका दारोगा अपनी नोटबुकमें न मालूम क्या लिख रहा था। पुलिसको देखकर अनेक आदमी बाहर तमाशा देखनेके लिए जमा हो गये थे। दिवाकर बाबूके हृदयगगनका सुधांशु भी सूखे मुँहसे स्थिर होकर एक कोनेमें खड़ा था।

दिवाकरके मनमें आया कि साहबके यहाँ जाकर परिचय करनेका यह अच्छा अवसर है। पर बिना बुलाये किसी कार्यमें हस्तक्षेप करना विलायती नीतिके विरुद्ध है। यह सोचकर उसने इस तरह जानेका संकल्प त्याग दिया। परन्तु मामला क्या है—यह जाननेके लिए दिवाकरको बड़ी उत्सुकता हुई। उसने अपने नौकरसे पूछा—मूर साहबके बंगलेमें यह कैसी गोल माल है?

नौकरने कहा—साहबके बहुतसे बहुमूल्य जवाहरात और नकद रुपये चोरी हो गये हैं। दारोगा सा० तहकीकात करते हैं।

कहनेकी जरूरत नहीं कि इस विपत्तिके संवादसे प्रेमिक दिवाकरका हृदय दुःखसे भर गया। जिस समय उसने पत्थरकी मूर्तिकी तरह खड़ी हुई मिसेज मूरका रक्तहीन चेहरा देखा उस समय दिवाकर बाबूके हृदयके भीतरी भागसे एक बड़े निश्वासकी उत्पत्ति हुई। जिस प्रेममें सहानुभूति नहीं है उसको प्रेम कहना भी व्यर्थ है।

[४]

दिनमणि सूर्य धीरे धीरे पश्चिम गगनमें मुँह छिपा रहा है । सांध्यसमीर दक्षिण दिशासे सुसं-वादा लाकर बरासके फूलोंको हँसा रहा है । आनन्दके मारे फूलकी दो एक पत्तियाँ टूटकर घासपर बैठे हुए प्रेमिक प्रेमिकाके ऊपर गिर पड़ीं । घासलेमें जानेसे पहले गुलगुचियाने एक-वार खूब जोरसे गाया । उसके प्रत्युत्तरमें काली कोयलने भी अपने कण्ठमें छिपाई हुई सुधाको चायुकी गोदमें बहा दिया ।

मिसेज मूरने कहा—“फ्लारेन्स, अब मुझसे और नहीं हो सकता । इस बार ही वृद्धने मुझ पर सन्देह किया था । वहाँ रहना हमारे लिए कितना असुविधाजनक है यह बतानेकी बात नहीं । न मालूम बूढ़ा मूर कब मरेगा ।”

जिस युवकके साथ मिसेज मूर बातचीत कर रही थी उसकी अवस्था कोई तीस सालकी होगी । उसका शरीर खूब मजबूत था । फ्लारेन्स हिलका मुखमण्डल यौवनकी कान्तिसे खूब उद्भासित था । हिल, मिसेज मूरके चचाका लड़का है । अर्थाभावके कारण वह बहिन क्लाराका पाणिय-हण नहीं कर सका था । अर्थवान् बूढ़े मूरसे शादी करनेपर भी युवती क्लारा फ्लारेन्सके प्रण-यको भूल नहीं सकी थी । सुविधा पाते ही वे दोनों एकान्तमें मिलते थे । वृद्धको इसका कुछ भी पता नहीं था ।

हिलने कहा—“इस बार तुमने दया न की तो बेतरह अपमानित होना पड़ेगा । तुमने उस दिन जो दिया था वह सब जाता रहा । कमसे कम एक सौ रुपया बिना मिले इज्जतका बचना असम्भव है ।”

क्लाराने कहा—“छिः फ्लारेन्स, तुम जुआ खेलना बन्द नहीं कर सकते ? इस बार कंजूस बूढ़ा त्ताड़ जायगा ।”

बहुत वादानुवादके बाद निश्चय हुआ कि इस बार फिर क्लारा सौ रुपये देकर हिलकी मानरक्षा करेगी । उसके बाद वह फिर कुछ न देगी ।

उक्त घटनाके तीन चार दिनोंके बाद दिवाकर बाबू अपने बंगलेके पीछेवाले मैदानमें प्रातः-समीरका सेवन कर रहे थे । मूर साहब उस समय मधुपुरमें नहीं थे, खानका काम देखनेके लिए बाहर गये हुए थे । इसी लिए मिसेज मूर कई कुत्तोंको साथ लिए अकेली हवा स्वारही थी और बीच बीचमें अपने नीलनयनोंके कटा-क्षोंसे दिवाकरके हृदयका अन्तस्तल तक आलो-डित कर देती थी ।

दिवाकरको देखकर एक छोटासा कुत्ता भौंकने लगा । मेम साहबने विरक्त होकर उसको चुप किया । उस समय दिवाकर और क्लाराके बीचमें ५-६ गजका ही अन्तर था । दिवाकरने सोचा कि यह सुयोग छोड़ना ठीक नहीं । उसने बड़े मुलायम भावसे विनयके साथ युवतीकी ओर फिर कर कहा—“Thank you, madam. ” युवतीने हँस दिया । दिवाकरके बागमें आकर उसने गुलाबकी तारीफ की, कृतार्थ युवकने झटपट कुछ गुलाब लेकर मेमसाहबको उपहारमें दिये । युवतीने उसका धन्यवाद किया और इधर उधरकी बातें करके अन्तमें कहा—“मेरे स्वामीका अन्तःकरण बड़ा सन्देहयुक्त है । ऐसा न होता तो मैं आपको अवश्य अपने यहाँ निमन्त्रित करती” निर्बोध दिवाकरने मानो स्वर्ग पालिया । फिर मिलनेकी आशा देकर मूर-पत्नी बिदा होगई ।

उक्त घटनाके सात दिन बाद मूर-पत्नीने दिवाकरको फिर दर्शन दिये और उसको शामका भोजन करनेके लिए अपने स्थानपर निमंत्रण दिया । दिवाकरने सोचा कि आज वृद्ध

स्थान पर नहीं है इसी लिए क्लाराने शिष्टाचार दिखाकर मित्रता दृढ़ करनेके अभिप्रायसे यह अनुग्रह किया है ।

[६]

अनेक तरहकी बातें करते करते रातके दस बज गये । सिर्फ एक नौकर उनकी सेवा कर रहा था । दिवाकरने ऐसा सुख अपने जीवनमें कभी अनुभव नहीं किया था । प्रगल्भा क्लारा अनेक तरहकी बातें करके दिवाकरको प्रसन्न कर रही थी । रातको सोते समय पहननेकी पोशाकसे युवतीकारूप सौगुना बढ़ गया था ।

क्लाराने हँसकर कहा—“बाबू आप तो जमीन्दार हैं । हमारी इस वृद्धके हाथसे रक्षा कीजिए, हमें कहीं ले चलिए ।”

दिवाकरने चिन्तित होकर उत्तर दिया—“यह किस तरह हो सकता है मेमसाहब ?”

मेम साहबने कहा—“बाबू, रुपयेमें कुछ सुख नहीं है ।” ठीक इसी समय बाहर सड़कपर घोड़ेकी टापका शब्द सुनाई दिया । विस्मित होकर क्लाराने कहा—“बाबू, सर्वनाश होगया । मालूम होता है साहब आगये ।”

भीत दिवाकर उठ खड़ा हुआ । क्लाराने कहा—“कुछ डर नहीं है । आप मेरे साथ आइए ।” विस्मित दिवाकर अन्धकारको चीरकर पासके एक घरमें पहुँचा । क्लाराने चाबीसे ताला खोला, उसके बाद दिवाकरको उस घरमें खड़ा करके और चाबीका गुच्छा उसके हाथमें देकर कहा “बाबू इसी घरमें आप रुकिए । जब सब लोग सो जायँ तब घरमें चाबी देकर चले जाना । इसी घरमें हमारे पतिकी सब सम्पत्ति है ।” स्तब्ध दिवाकरने चाबी लेकर अन्धेरे घरमें प्रवेश किया ।

युवतीने कहा—“बाबू, एक बात और है । हमारी चिह्नस्वरूप यह अंगूठी हाथमेंसे न उतारिएगा ।”

अंगूठी पहरकर दिवाकरके आनन्दकी सीमा न रही । बहुत दिनोंके परिचितकी तरह क्लाराको हृदयसे लगाकर वह बड़े स्नेहसे उसका मुँह चुम्बन करने लगा । बादको उसी घरमें सबके सो जानेकी प्रतीक्षा करने लगा ।

[७]

मूर साहब जैसा कि उनका अभ्यास था आते ही अपने भण्डारघरके सामने खड़े होगये । बूढ़ेने सोचा कि क्या मैं स्वप्न देख रहा हूँ ? बूढ़ेने अपनी जेबमें हाथ डालकर देखा तो तालियाँ उसमें पड़ी हुई थीं—पर फिर भी दर्वाजेमें लगा हुआ ताला खुला हुआ था । यह काम किसने किया था—वृद्ध कुछ निश्चय नहीं कर सका । बूढ़ेने झटपट लैम्प जलाया और अन्दर जाकर उसने देखा कि जीवनभरमें पैदा की हुई प्रियतम सम्पत्तिके पास एक काला आदमी खड़ा हुआ है । बूढ़ेने उसे देखते ही जोरसे चीख मारी ।

वृद्धके साथ उसका हेउड नामका मित्र काली पहाड़ीसे आया था । मूरकी चीख सुनकर वह और नौकर सभी वहाँ पहुँच गये । कहनेकी जरूरत नहीं कि भय, लज्जा और विस्मयके मारे दिवाकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया । जब उसका थोड़ा बहुत विस्मय-दूर हुआ तब उसने अपना पहला कर्तव्य भागना स्थिर किया । इसी लिए वृद्धकी चीखको सुनकर उसने भागनेकी चेष्टा की । किन्तु हेउडके आ जानेसे उसको बन्दी हो जाना पड़ा ।

उस समय मूर साहबके बंगलेमें बड़ी गोल-माल मची । उसी समय धीरे धीरे आँखें पोंछती हुई क्लाराने आकर कहा—“जोसेफ, प्रियतम, तुम कब आये—यह गोलमाल कैसा है ?”

“मूरने कहा—प्रियतमे, सर्वनाश हुआ चाहता था । इस समय भगवानने बड़ी रक्षा की, नहीं

तो हमारा सभी कुछ स्वाहा हो गया था ।
भण्डारघरमें चोर घुस गया था ।”

इस समय दिवाकर एकटक क्लाराकी ओर देख रहा था । मूरकी बात सुनकर क्लाराने बड़े भावसे आह खींची ।

हेउडने कहा—“ मि० मूर, इस आदमीके हाथमें यह अंगूठी किसकी है ?

मूरने कहा—“ हाय राम ! यह तो मेरी हीरेकी बहुमूल्य अंगूठी है । यह तो मेरे बक्समें बन्द थी । मालूम होता है इसने हमारी अन्यान्य चीजें भी चुराई हैं ।”

इसके बाद हेउडने दिवाकरकी जेबकी तलाशी ली । उसमेंसे क्लाराका दिया हुआ चाबीका गुच्छा निकला ।

वृद्धने सिरपर हाथ मारकर कहा—Great Heavens ! This is a bunch of duplicate keys.

सभी आदमी बड़े आश्चर्यसे दिवाकरकी ओर देखने लगे । एक नौकरने कहा—“ हजूर यह बाबू बंगलेके बगलमें कोई महीना भरसे आया होगा !”

उस समय वृद्धने एक भारी रहस्यको मानो खोला । उसने समझा कि बीच बीचमें कौन उसका धन चुराता था । यह काला आदमी ही भद्रवेशमें पड़ोसमें रहकर उसका सर्वनाश किया करता था । भगवानकी अपार करुणाके बिना क्या आज यह चोर पकड़ा जा सकता था ?

क्लाराने कहा—“ जोसेफ, मैं गोलमाल पसन्द नहीं करती । किन्तु अब मैं समझती हूँ तुम्हारा व्यवहार किस कदर नीच है ! यह दुष्ट तो तुम्हारा धन चुराता था और तुम मुझको—अपनी प्यारी स्त्रीको—प्रेमके—”

वृद्धने उसको आगे कोई बात कहने न दी । चम्पेकी कलीकी समान उन अंगुलियोंको चूम-

कर वह बोला—“ प्यारी क्लारा, मुझे क्षमा कर !”

और हतभाग्य दिवाकर ! वह मन-ही-मन कहने लगा—“ ओ पिशाची, शैतानी ! इसी लिए तेरा इतना प्यार था । पृथ्वी बड़ी कठिन है । इसका मुँह कैसा सरस और सरल है, पर इसके प्राण नारकी भावोंसे पूर्ण हैं । यह अँगरेज महिला है—यही इसकी सभ्यता है !”

सभी विस्मित थे । सिर्फ नाजिरखॉ नामका नौकर—जिसने शामसे दिवाकरकी खातिर की थी—कभी कभी दिवाकरकी ओर दर्द भरी दृष्टिसे देख लेता था ।

[<]

जेलखानेके रोशन-दानसे चाँदनीकी एक क्षीण और मलिन रेखा दिवाकरकी दीन शय्या-पर पड़ रही थी । जेलखानेके बाहर थोड़ी दूर गाँवमें एक कुत्ता भोंक रहा था । उसका शब्द झिझकी झंकारके साथ मिलकर हतभाग्य बन्दीके स्मृतिपटपर बचपनकी अपने ग्रामकी शान्त, स्निग्ध और मधुर छवि खींच रहा था । एक चिन्ताके बाद दूसरी चिन्ता, एक भावके बाद दूसरा भाव, भाव-प्रवण दिवाकरके हृदयको आलोड़ित कर रहा था, उसके सौ सौ टुकड़े कर रहा था । उसके अनजानमें दोचार आँसुओंकी बूँदें उसके नेत्रोंमें आगई थी । युवक सोच रहा था—कैसा अपमान है, कैसा मनस्ताप है और कैसा अपयश मिला है । अच्छे घरानेमें पैदा होकर मिथ्या प्रलोभनमें पड़कर मिथ्या अपराधमें सच्चा दण्ड भोग रहा हूँ । चाहता तो बच भी सकता था । जजसे सब बात सच सच कह देता । घर चचाके पास संवाद भेज देता तो शायद यह दुर्गति नहीं होती । पर किस तरह इस जघन्य बातको प्रकट करता—किस तरह जेलसे निकलकर आत्मपरिचय देकर अपना काला मुँह दिखाता—चुप रहनेके सिवा—सच तो यह है मेरे लिए और कोई उपाय ही नहीं था ।

सच तो यह है कि दिवाकरके मौनभावको देखकर और उसके सुन्दर मुखकी श्रीको देखकर विचारकके मनमें उसके अपराधके विषयमें सन्देह पैदा हुआ था । वह जान गया था कि इस मामलेमें जरूर कोई रहस्य है, पर चाक्षुष प्रमाणके सामने वह अपनी राय किस तरह जाहिर कर सकता था ? दिवाकर यदि सब बात सच सच विचारकके सामने कह डालता तो कौन कह सकता है कि उसके भाग्यमें क्या होता ?

जिस समय जेलखानेकी निर्जनतामें दिवाकर घटनाके पूर्वापर पर विचार कर रहा था, उस समय उसने अंगरेज महिलाके कपटकी ही निन्दा की हो—यह बात नहीं । एक तरहकी गभीर आत्मगलानि उसके चित्तको सैकड़ों जेलखानोंकी तकलीफोंके बराबर कष्ट देती थी । अच्छे वंशमें पैदा हुए, शिक्षाप्राप्त युवकके लिए जानबूझकर परस्त्रीके साथ व्यभिचारके पथमें अग्रसर होना कितना घृणित कार्य और नारकी आचरण है—धीरे धीरे युवकके मस्तिष्कमें ये बातें प्रवेश करने लगीं । वह कभी सोचता—क्या मुझे बिना अपराधके दण्ड मिला है ? चोरीके अपराधमें निर्दोष होते हुए भी उसकी अपेक्षा अधिक पापाचरण करनेको क्या मैं उद्यत नहीं है था ? भगवानके राज्यमें न्याय विचारका अभाव है—ऐसी बातका सोचना पागलपन नहीं है तो और क्या है । बचपनसे केवल भावोंकी उत्तेजनामें कार्य करता आया; चरित्रगठनकी ओर जितना ध्यान देना चाहिए उतना कभी नहीं दिया ! कभी स्थिरचित्त होकर विचार नहीं किया कि जो कार्य कर रहा हूँ उसका कैसा फल निकलेगा—अच्छा या बुरा; कल्पना राज्यके बनमें, बागमें, महलमें, कुटीमें अनेक बार बिचरा हूँ उसीका यह फल है कि आज मुझे इस नार-बाट देँ । यह इकरार कीजिए । ”

कीजीवपूर्ण वास्तव जगतके घृणित और जघन्य जेलखानेमें वास करना पड़ा है ।

[९]

समय किसीकी अपेक्षा नहीं करता । बात पुरानी होकर भी सच्ची रहती है । दिवाकरके कारागारका समय भी अनन्तके पथमें पिछड़ने लगा । सात दिन बाद उसकी कैदके तीन मास पूरे होजायेंगे—फिर वह अपनी खोई हुई स्वाधीनता पालेगा । जेलसे छूटकर दिवाकर घर नहीं जायगा, यह सिद्धांत तो उसने स्थिर कर लिया है । कौन कह सकता है कि इतनी चेष्टा करने पर भी घरपर किसीको इस बातका पता लग गया हो । किस तरह उसका भविष्य जीवन कटेगा—यही चिन्ता दिवाकरके हृदयको हर समय लगी रहती है ।

इसी समय कर्मचन्दने उसके पीछेसे आकर रामराम की । दिवाकर किसी कैदीसे बातचीत नहीं करता था । समय काटनेके लिए दो एकके साथ उसको बात करना पड़ती थी । उनमेसे कर्मचन्द भी एक था ।

कर्मचन्दने कहा—“ बाबू आपका समय तो पूरा हो गया । पर हमारे समयका अब भी पाँच वर्ष बाकी है । ”

दिवाकरने जबर्दस्तीकी विषाद मिली हँसी हँस दी । एक डाकूके साथ सुखदुःखकी कथा कहते हुए उसको कुछ नये प्रकारका आश्चर्यसा मालूम हुआ ।

कर्मचन्दने कहा—“ बाबू, नाराज मत होना । एक जगह मेरे कोई दश हजार रुपये रखे हुए हैं । कोई हर्ज न समझें तो जेलसे छूटकर उन रुपयोंसे कोई रोजगार शुरू कर दें । जब मैं जेलसे छूट कर आऊँ तो आप मुझे आपके पास जितनी सम्पत्ति हो उसमेंसे आधी

इन तीन महीनोंमें दिवाकरके जीवनमें जितने आश्चर्य भरे व्यापार हुए थे उनमें यह बात सबसे बढ़कर आश्चर्यकी थी। प्रस्तावको सुनते ही उसका हृदय धकधक करने लगा। भय, विस्मय, नीतिज्ञान और लोभका उल्लास बढ़ानेवाला सुमिष्ट स्वर—ये सब मिलकर एक साथ युवकके हृदयमें युद्ध करने लगे। वह सोचने लगा—“छिः छिः क्या चोरीके धनसे भविष्यजीवनके सुखरूप किलेकी भित्ति बनाना होगी? नहीं नहीं, मैंने तो चोरी की नहीं—मैं तो सिर्फ कर्ज ले रहा हूँ। फिर मेरा हृदय ताण्डव नाच क्यों नाच रहा है? हृदयकी दुर्बलताको अब करीब न फटकने दूँगा। पर यदि मालूम होगया कि मैं चोरीका धन आत्मसात् करने चला हूँ तो फिर जेलखाना—ओ बाबा !”

दिवाकरने कर्मचन्दसे कहा—“भाई, मुझे तुम्हारा रुपया नहीं चाहिए।”

कर्मचन्द चुपचाप दिवाकरको देख रहा था। उसने देखा कि दिवाकरकी भीतरी मंत्री-सभामें उसके पक्षकी आवाज भी है। उसने दिवाकरको तर्कद्वारा समझाना शुरू किया। उसने कहा—“यदि तुम महाजनका कर्ज लेते तो यह कैसे जान सकते कि उसका वह रुपया पापार्जित नहीं है और कौन तुमसे कहता है कि कर्मचन्दका गुप्त धन चोरीसे प्राप्त किया गया है? यदि तुम्हें यह सन्देह ही है तो तुम इसका प्रायश्चित्त दान द्वारा कर सकते हो। दश हजार रुपयोंसे रोजगार करके यदि लखपती बन जाओ तो उसमेंसे बीस हजार या तीस हजारका दान करके सारा पाप धो सकते हो।” दिवाकर जब घर नहीं जायगा तो उसको यह रुपया ले लेनेमें आपत्ति भी क्या है?

जगतमें जो नित्य होता है—वही हुआ। जीत शैतानकी ही हुई। दुर्बल नरने लोभकी

मोहिनी शक्तिसे पराजित होकर उसके सम्मुख अपना बलिदान दिया। विजयी कर्मचन्दने दिवाकरको बता दिया कि किस जगह उसका रुपया गड़ा हुआ है।

[१०]

कर्मचन्दसे दश हजार रुपयोंका लेना पहले तो दिवाकरको अच्छा नहीं मालूम हुआ। पर जब उसने देखा कि लक्ष्मीका अनुग्रह उसके ऊपर अविश्रान्तभावसे बरस रहा है तब विवेकके साथ उसका मन माना निबटारा हो ही गया। उत्तर पश्चिमके दो एक शहरोंमें घूमकर दिवाकरने लाहोरमें आकर व्यवसाय शुरू कर दिया। उसमें एक सालमें कोई तीन हजार रुपये मिले। पर फिर भी उसे शान्ति नहीं मिली। इसी लिए बहुत सोच विचार कर वह अपने देशको लौट आया। उसकी शोका-तुरा माताके साथ उसके प्रथम साक्षात्ने इस पापपरिपूर्ण पृथ्वीमें भी स्वर्गीय दृश्य दिखा दिया। उसके घर लौट आनेकी खबर पाकर ग्रामके नरनरियोंके झुण्डके झुण्ड आकर उससे प्रश्न पर प्रश्न करने लगे। उसके पुराने शत्रु भी उसके अवस्थापरिवर्तनके विषयको लेकर उसकी अभ्यर्थना करने लगे। उन सब बातोंको लिखनेके लिए हमारे इस छोटेसे इतिहासमें स्थान नहीं है। एक सप्ताहके बाद दिवाकर अपनी वृद्धा माताको लेकर लाहोर चला आया और उस समयको आज बीस वर्ष गुजर गये वह तभीसे लाहोरमें ही रहता है।

अपने कारागारसे छूटनेके पाँच वर्ष बाद दिवाकरने कर्मचन्दका पता लगाया था; पर उस हतभग्यकी जेलमें ही मृत्यु हो गई थी।

[११]

दिवाकर जिस समय लाहोरमें आकर बसा था उस समय कोई भी बंगाली वहाँ नहीं रहता

था। विदेशमें आकर यौवमसुलभ अध्यवसायके साथ परिश्रमके द्वारा रुपया पैदा करके सभी बंगाली अपने अपने देशको लौट गये थे। उनमेंसे कोई होता तो सम्भव था कि दिवाकरका रहस्य खुल जाता, पर उनमेंसे किसीके न होनेसे लाहौरवासी बंगाली दिवाकरके सम्बन्धमें मन माना सिद्धान्त बनाकर अपना अपना कौतूहल निवारण कर लेते थे।

एक दिन आशुघोषने कहा—“ आज कुछ ही क्यों न हो, दिवाकरका पूर्ण परिचय प्राप्त करेंगे ही ! ” इतना बड़ा कार्य अकेले सम्पादन करना मुश्किल है यह निश्चय करके आशुघोष सतीशचन्द्रके पास पहुँचा।

उसके प्रस्तावको सुनकर सतीशने कहा— “ भाई, किसी बड़े आदमीसे इस तरहका व्यक्तिगत प्रश्न करना अच्छी बात नहीं है। दूसरे जब दिवाकर बाबू अपनी स्थिर और भावहीन आँखोंसे मुझे देखते हैं सच कहता हूँ— तब मेरा दिल ठण्डा पड़ जाता है। ”

अपनी बड़ी बड़ी मूँछोंपर हाथ फेरते हुए आशुघोषने कहा—“ क्या तुम मुझे निरा भोला बालक समझते हो? हमने पहलेसे ही बहाना बना रक्खा है। ”

सतीशने कहा—“ कैसा बहाना है सुनाओ तो सही। ”

आशुने कहा—“ हम कहेंगे कि हमसे कलकत्तेके एक समाचारपत्रने लाहौरके सबसे बड़े बंगालीका जीवनचरित माँगा है। हमारे लाहोरी बंगालियोंमें दिवाकर ही धनमें, मानमें, दयामें और सहृदयतामें सबसे बढकर हैं। यदि वास्तविक हाल मालूम हो गया तो समाचारपत्रमें छपवाया भी जा सकता है। ”

सतीशचन्द्रने आशुकी बुद्धिकी बड़ी तारीफ की और वह स्वयं वस्त्र पहननेके लिए चला गया।

[१२]

दिन भरके सब कामोंसे निवृत्त होकर दिवाकर बाबू अपने सजे हुए कमरमें बैठे बेहाल बजा रहे हैं। बेहालाका स्वर क्रमशः उत्तरोत्तर चढ़ रहा है। इस संगीतसुधासागरमें दिवाकर बाबू खूब मग्न हो रहे हैं। एक काला बिलाव उनके चरणोंमें बैठा हुआ उनके चेहरेकी ओर एकटक दृष्टिसे देख रहा है। वह कभी कभी अपनी आँख मूँद लेता है। बाहर पिंजरबद्ध बुलबुल बेहालेके स्वरमें स्वर मिलानेकी व्यर्थ चेष्टा कर रहा है। बुलबुलका स्वर जरूर आनन्दमय है। उसको सुनकर हृदय फड़क उठता है। दिवाकरके बेहालेका स्वर करुण और मर्मस्पर्शी है। उसको सुनकर हृदय स्तब्ध हो जाता है और चित्तकी वृत्तियाँ नीरस हो जाती हैं। इसीलिए आशु और सतीश खुशी खुशी घरमें आकर भी संगीत सुनकर स्तब्ध हो गये हैं। दिवाकरने उनको देखा तक भी नहीं।

बिलाव भी अपने मालिककी निस्तब्धता भंग होनेके भयसे उनको देखकर फर्शपर लेट गया। दिवाकरने पीछे फिर कर देखा कि दो भद्रपुरुष उससे मिलनेके लिए बाहर खड़े हुए हैं।

अप्रतिभ दिवाकरने झटपट बेहाला रसकर कहा—“ बड़े सौभाग्यकी बात है। एक साथ दोनोंने कृपा की है। क्षमा कीजिए, मुझे आपके आनेका शब्द भी नहीं सुनाई दिया। ”

आशुने कहा—“ हम तो बाजा सुन रहे थे। आपने बजाना बन्द क्यों कर दिया ? ”

दिवाकरने कुछ हँसकर कहा—“ समय काटनेके लिए कभी बजा लेता हूँ। ”

बातचीत होने लगी। दोनों युवक साहस करने पर भी अपना अभिप्राय नहीं कह सके। सतीशने चुपकेसे आशुसे कहा—“ मतलबकी बात क्यों नहीं करते ? ”

आशुने बड़ी मुश्किलसे अपने मनका भाव प्रकट किया।

दिवाकरने हँसकर कहा—“ धनवान होनेसे समाजमें भी बड़ा होजाय यह बात तो नहीं है। हम और हमारी जीवनी ही क्या ! ”

इसी समय नौकरने आकर कहा कि “ एक मेम और एक अँगरेज आपसे मिलना चाहते हैं ।” काम पड़नेपर दिवाकर बाबू अँगरेज पुरुषसे तो कभी कभी मिल लेते थे; पर आज २० वर्षसे उन्होंने किसी मेमकी ओर देखातक भी नहीं था। नौकरसे कहा—“ जरूरत हो तो साहब आकर मिल सकता है; मेमसे मैं मिलना नहीं चाहता ।”

आशु और सतीशने एक दूसरेकी ओर देखा। नौकरने आकर कहा—“ मेम साहब बिना आपसे मिले किसी तरह जाना नहीं चाहतीं ।”

दिवाकर बड़ी झंझटमें पड़ गये। मौका पाकर आशुघोषने कहा—“हर्ज क्या है, मिल लीजिए क्या कहती है ? ”

यदि ये लोग इस समय नहीं होते तो दिवाकर बाबू किसी तरह भी मेमसे मिलना पसन्द नहीं करते। पर इन दोनोंके सामने इनको मजबूरन मेम साहबको मिलनेके लिए बुलाना पड़ा। आशु और सतीशको जानेके लिए उठते देख दिवाकरने कहा—“महाशय, आप बैठिए। इन लोगोंसे एकान्तमें मिलना मैं अच्छा नहीं समझता ।”

सतीशने आशुको बैठनेके लिए हाथसे संकेत किया। आशु मूँड़के अग्रभागको मरोड़ते हुए साहबके कार्डको पढ़ने लगा, उसमें लिखा था—‘फ्लोरेन्स हिल ।’

धीरे धीरे फ्लोरेन्स हिलने कमरेमें आकर दिवाकरको सलाम किया। उसके पीछे एक अघेड़ उम्रकी स्त्री थी—जिसको देखनेसे मालूम होता था कि वह एक दिन जरूर सुन्दरी होगी। उसको देखते ही दिवाकर चकित होगया। दिवाकरने मन-ही-मन कहा—मालूम होता है यह वही पापिष्ठा है। पिशाची राक्षसी ! आज भी तेरे शरी-

रमें सौन्दर्ययका कुछ अंश बाकी है। अब और किस विपत्तिका सूत्रपात होता है—मालूम नहीं।

क्लाराने दिवाकरको नहीं पहचाना। इन कई सालोंमें उसकी मानसिक स्थितिमें विशेष परिवर्तन हो गया था। उसके नवनीत सम कोमल वक्षःस्थलपर एक लम्बा वस्त्र पड़ा हुआ था। उसके माथे पर चिन्ताकी रेखा स्पष्ट दिखाई पड़ती थी। उसके चंचल कमल-नयन इस समय स्थिर गम्भीर और एक प्रकारके दुःखभावसे पूर्ण थे।

दिवाकरके परिचित स्वरमें क्लाराने कहा—बाबू, बड़ी विपत्तिमें फँसकर आज हम स्त्री पुरुष आपकी सेवामें उपस्थित हुए हैं। हमने सुना है लाहोरमें आप जैसा कोई दानी नहीं है—इसी लिए हम आपके पास भिक्षार्थ आये हैं ।”

मालूम होता है कि अपनी भूमिकासे दिवाकरके हृदयपर कुछ प्रभाव पड़ा या नहीं, यह बात देखनेके लिए वे दोनों कुछ देरके लिए चुप होरहे। आशुघोष दिवाकरके मुँहकी ओर आश्चर्यसे देखने लगा। उनके मुँहकी ऐसी आकृति उसने न देखी थी।

रमणीने फिर कहना आरम्भ किया—“बाबू, मेरा स्वामी रेलका गार्ड है। अपने पहले स्वामीके मरने पर मुझे बहुत धन मिला था। मुझे कहते लज्जा मालूम होती है कि जुएमें हिलने वह सब रुपया नष्ट कर दिया। अपनी फिजूल-खर्चीके कारण यह इस समय इतना ऋणग्रस्त हो गया है, कि सारी लाइनमें इसको एक पैसा भी कर्ज नहीं मिल सकता। अब एक आदमीकी पाँच सौ रुपयेकी डिग्रीमें उसको कल जेल जाना होगा। बाबू, इस अपमानके सामने आप जैसे महानुभाव सज्जनसे भीख माँगना अच्छा है इसी लिए हम आपकी सेवामें आये हैं ।’

हिल-पत्नी चुप हो गई। आशुघोषने देखा कि दिवाकरके चेहरे पर भी चञ्चल भावकी जगह गम्भीर भाव आगया है। दिवाकरने तबीयतको

सँभालकर कहा—“आपके स्वामीको सब कितना रुपया देना है ?”

क्लाराने कहा—“बाबू, इसकी बात क्या पूछते हो; कोई तीन हजार रुपये देना है ।”

उसकी बातका उत्तर न देकर दिवाकर बाबूने चेक-बहीसे तीन हजारका एक चेक फाड़कर हिलासाहबको दे दिया । सभी विस्मित हो गये ।

हिला साहबने कहा—“बाबू, मैं आपकी दयाका उपयुक्त पात्र नहीं हूँ । मैं बड़ा पापी हूँ—इस रमणीके प्रेममें पड़कर मैंने अनेक पाप किये हैं ।”

क्लाराका चेहरा रक्तहीन हो गया । दिवाकरने कहा—“इसके पहले स्वामीका नाम मूर है ?”

विस्मित क्लाराने कहा—“हाँ ।”

“मधुपुरमें रहता था ?”

हिलने कहा—“आपने किस तरह जाना ?”

दिवाकरने क्लारासे कहा—“मेम साहब, मुझे पहचानती हो ? झूठे अपवादमें, अपना पाप छिपानेके लिए जिसका सर्वनाश करनेमें जरा भी संकोच नहीं किया था उसको अब भी पहचानती हो ? इहकाल और परकाल मानने-वाला मैं असभ्य हिन्दू हूँ । तुम्हारे आशीर्वाद्से ही मेरे पास इतनी सम्पत्ति है । आज उसीका मूल्य स्वरूप यह साधारण प्रतिदान किया है ।”

दिवाकरकी बात समाप्त होते न होते क्लारा पृथ्वीपर गिर पड़ी । दिवाकर उठकर दूसरे कमरेमें चला गया । हिलकी क्लाराके ऊपर विरक्ति दुगनी होगई ! उसने सोचा—इस बोझके बिना दूर हुए रक्षा नहीं है ।

आशु और सतीशने बड़े यत्नसे क्लाराकी मूर्छाको दूर किया । क्लाराके चले जानेपर सतीशने कहा—“भाई क्या मामला है !”

आशुबोध मूँछ मरोड़ते मरोड़ते बोले—“हाँ, दिवाकर वास्तवमें ही कुमार हैं । फिर भी हमारी थियरी एकदम निर्मूल नहीं है । मूलमें बंगाली और मेमका मिश्र प्रेम है जरूर ।”

अहिंसा परमो धर्मः ।

[ल०-श्रीयुत लाला लाजपतिराय ।]

कोई धर्म सत्यसे उच्चतर नहीं और न ‘अहिंसा परमो धर्मः’ से बढ़कर कोई जीवनकी चर्या ही है । ‘अहिंसा परमो धर्मः’ की उक्ति ठीक ठीक समझी जाकर व्यवहृत की जाय तो वह मनुष्यको पूर्ण साधु और वीर बना देती है । ठीक ठीक अर्थ न समझने और दुरुपयोगसे वही मनुष्यको कायर, डरपोक, पतित और मूर्ख भी बना देती है । एक समय ऐसा था जब कि हिन्दू इसे ठीक ठीक समझते और इसका उचित उपयोग भी करते थे । उस समय वे एक सत्य-प्रेमी जातिके सुपुरुष और वीर मनुष्य थे । तत्पश्चात् एक ऐसा समय आया, जब कि कुछ सुपुरुषोंने पूर्ण शुभ भावसे और साधु विचारसे इसको एक कल्पनाका रूप दिया । उन्होंने केवल इसे अन्य सब धर्माचरणोंसे ऊपर ही नहीं रक्खा, वरन् श्रेष्ठजीवनकी उसे एक मुख्य कसौटी भी बनाई । उन्होंने केवल अपने जीवनहीमें इसका अतीव उपयोग नहीं किया, वरन् अन्य सब वस्तुओंकी सगोचरता पर भी इसको एक महान् जातीय धर्मका रूप दे डाला । अन्य सब धर्माचरण, जो जाति तथा मनुष्यको उच्च बनाते हैं, तुच्छ समझ पीछे छोड़ दिये गये । क्योंकि उक्तप्रताके विचारसे अहिंसा ही सबसे उच्च मानी गई थी । साहस, वीरता और शूरता सब किनारे रख दिये गये । देशभक्ति, मातृभूमि-प्रेम, कुटुम्बीजन-स्नेह और जाति-सन्मान आदि सब भुला दिये गये ।

इसका कारण अहिंसाका दुरुपयोग अथवा अन्य सब वस्तुओंको निकृष्ट समझनेके कारण

अहिंसाके प्रति उत्पन्न अनुपयुक्त महत्त्व था, जिससे कि हिन्दुओंमें सामाजिक, राजनैतिक और नैतिक पतनकी सम्भावना उपास्थित हो गई। वे यह भूल गये कि मनुष्यत्व भी अहिंसाके समान ही एक धर्माचरण है। वास्तवमें मनुष्यत्व अहिंसासे किसी रूपमें समताहीन न था किन्तु उस समय तक, जब तक अहिंसाका उचित उपयोग किया जाता। उन्होंने एकमात्र सत्य—जिस पर जातीय-स्वार्थ अवलंबित है अर्थात् सबलोंसे निर्बलोंकी रक्षा, बलात्कारसे किसीकी वस्तु छीननेवालों और परवस्तु हड़प करनेवालों, चोरों और दुष्प्रवृत्तिवालों, विलासप्रिय दुर्जनों एवं स्त्रियोंकी सच्चरित्रताका गुप्त रीतिसे नाश करनेवालों, दुष्टों और वंचकोंको अन्याय और दुःख देनेसे रोकना आदि—की उपेक्षा की। उन्होंने यह माननेकी अवहेलना की, कि मनुष्यत्वकी रक्षाके लिए न्याययुक्त क्रोध और प्रतिदंडका भय आवश्यक है जिससे निर्दोषोंको हानि पहुँचाने, पवित्रताको नष्ट करने और दूसरोंके स्वत्वोंको छीननेवाले दुष्प्रवृत्तिके मनुष्योंके चित्तको रोकनेमें मनुष्य समर्थ हो। वे सत्यकी उत्कृष्टता समझनेमें सफल नहीं हुए। क्योंकि जो किसी अत्याचार, अन्याय या दुष्कर्मको होने देता है और इस तरह उसकी अधीनता स्वीकार कर लेता है वह एक प्रकारसे उसकी पुष्टि कर उसके करनेमें उत्तेजना देता है तथा वह अंशतः दुष्कर्म करनेवालेकी वृद्धि और बलवृद्धिका भी उत्तरदाता होता है।

‘अहिंसा’ की अत्युपयोगिता एवं दुरुपयोगिता एक प्रकारकी छूत है, जो क्रमको ढीला कर देती है, सुगुणताको निर्बल बना देती है, स्त्री पुरुषोंको अर्धविक्षिप्त, शक्तिहीन और शिथिल बना देती है; और उन्हें सदाचरण तथा शुभफ-

लकी चिन्तनाके लिए शक्तिशाली नहीं रहने देती।

यह मनुष्यको व्याधिग्रस्त एवं भीरु बना देती है। जैनधर्मके स्थापक, साधुपुरुष थे तथा उन्होंने आत्मत्याग एवं आत्म-संयमकी नीतिसे जीवनको बाँध दिया था। उनके अनुयायी जैन-साधु उन साधुपुरुषोंमेंसे हैं, जिन्होंने मानसिक एवं हार्दिक सभी इच्छाओंके दमन करनेमें हिंसाकी उत्तेजना पर बहुत बड़ी सफलता प्राप्त कर रखी है। टालस्टायके मतकी अहिंसाका रूप अर्धा कुछ ही वर्षोंका फल है। जैन अहिंसा, भारतवर्षमें तीन सहस्र वर्षोंसे मानी जाती है। पृथ्वीतल पर अन्य कोई भी ऐसा देश नहीं, जहाँ अहिंसाके इतने अधिक और ऐसे पक्के अनुयायी हों, जितने और जैसे भारतवर्षमें हो चुके और अब तक वर्तमान हैं। तब भी संसार भरमें इस देशके समान कोई ऐसा पददलित और मानुषिक गुणोंसे वंचित देश नहीं, जैसा कि भारतवर्ष आज दिन हो रहा है अथवा गत पन्द्रह शताब्दियोंसे है। कुछ लोग कह सकते हैं कि यह सब अधःपतन अहिंसाकी सदैव उपयोगितासे नहीं, वरन् अन्य धर्माचरणोंकी हीनतासे हुआ है।

अधिक न कह कर हम इतना ही कहेंगे कि कमसे कम इस अहिंसाके सिद्धान्तका भ्रष्ट हुआ स्वरूप भी (और अनेक कारणोंके साथ) भारतके स्वमान, पौरुष और धर्माचरणको हानि पहुँचानेवाले कारणोंमेंसे एक था। वे पुरुष जो इस सिद्धान्त पर पूर्ण विश्वास करनेका दावा करते हैं स्वयं अपने आचरणोंसे प्रमाणित करते हैं कि यह विकारयुक्त सत्यताका उपयोग वास्तवमें जीवनको छल मनुष्यत्वहीनता तथा अत्याचारकी ओर ले जाता है। मैंने स्वयं एक जैन-परिवारमें जन्म ग्रहण

किया है। मेरे पितामह अहिंसाके अटल विश्वासी थे। यहाँ तक कि चाहे उन्हें एक सर्प काट क्यों न लेता पर वे उसे कभी न मारते। वे कभी एक कीटाणु तकको भी हानि नहीं पहुँचाते थे। वे अपना बहुतसा समय पूजा-र्चनादिमें ही व्यतीत करते थे। वे पूर्णरूपसे एक धर्मात्मा पुरुष थे, समाजमें उनका उच्च-स्थान और मान था। उनके एक भाई विरक्त तथा उक्त मतके एक प्रसिद्ध आचार्य थे। साधु महात्माओंमें जिनसे कभी मुझे अपने जीवनमें मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वे एक सर्वाङ्गिष्ठ सज्जन थे। उन्होंने अपना जीवन अपने उद्देश्यानुसार, अवेशों, इच्छाओं तथा मांस-भक्षण आदिसे अतीव घृणा करते हुए व्यतीत कर दिया। तब भी सदाचरणकी दृष्टिसे उनका जीवन रूखा और अप्राकृतिक ही रहा। मैं उनसे प्रेम और उनका सम्मान करता था, पर उनकी रीति नीतिका अनुसरण कर न सका और न उन्होंने ही कभी मेरे इस कार्यकी चिन्ता की। उनके भ्राता अर्थात् मेरे पितामह एक दूसरे ही प्रकारके मनुष्य थे। वे उस सविकार अहिंसामें (अहिंसाके भ्रष्ट हुए सिद्धान्तमें) विश्वास करते थे; जो प्रत्येक दशामें किसी प्राणीकी हिंसा करनेसे रोकती है, तथापि वे अपने व्यापार तथा व्यवसायमें सब तरहकी चालाकियाँ चलानेको केवल उचित ही नहीं वरन् योग्य भी समझते थे। उनके व्यवसायके नीतिशास्त्रके अनुसार ऐसी चालाकियोंको चलानेकी छूट थी। मैंने ऐसे विचारके बहुत मनुष्योंको भी देखा है जो नाबालिगों और विधवाओंको उनके अन्तिम ग्राससे भी वंचित कर देते हैं, पर वे ही जू, पक्षी अथवा अन्य प्राणियोंको मृत्युकी विपत्तिसे बचानेके लिए सहस्रों रुपये खर्च कर देते हैं। मेरे कहनेका यह तात्पर्य नहीं कि जैन

लोग अन्य हिन्दुओंकी अपेक्षा अधिक आचारहीन हैं अथवा उस प्रकारकी अहिंसा ही आचारहीनताकी ओर ले जाती है। ऐसा कच्चा विचार हमसे दूर ही रहे। जैनजाति, स्वयं अपनी रीति नीतिके अनुसार एक महती जाति है; जो दानी, सत्कारी और अपने व्यवसायमें परिश्रमी एवं चतुर है।

इसी प्रकार हिन्दुओंकी अन्य जातियाँ भी हैं। हमारे कहनेका तात्पर्य केवल इतना ही है कि अहिंसाके सीमाहीन आचारने उन जातियोंको किसी प्रकारसे श्रेष्ठ और अन्य जातियोंकी अपेक्षा नैतिकरूपसे भी उच्च नहीं बनाया है। वास्तवमें ये वे मनुष्य हैं जो विशेषरूपसे अत्याचार तथा अन्य सबलताओंसे दुःख उठाते हैं; क्योंकि वे अन्य लोगोंकी अपेक्षा अधिक असहाय हैं। इसका कारण केवल परम्परागत भय तथा सबलताके प्रति घृणा ही है। ये अपने तथा अपने निकटस्थ प्रिय स्नेहियोंके सम्मानकी रक्षा नहीं कर सकते हैं। यूरोप ईश्वरदत्त सबलताके स्वत्वोंका नवीन अवतार है, तब भी यह यूरोपके लिए उचित था कि एक टालस्टायको वह जन्म देता। पर भारतकी दशा दूसरी है। भारतमें हम अन्याय और सबलताको अत्याचार, वंचकता और उपद्रवके लिए कभी समर्थित नहीं करते। हमें विश्वास है कि भारत कभी यहाँतक नहीं पहुँच सकता। किन्तु हम यह शिक्षा दिये जानेके पक्षमें कभी अनुमति नहीं दे सकते कि आत्म-रक्षा, सम्मान-रक्षा तथा स्त्री, बहिन, पुत्री और माताकी रक्षाके लिए न्याययुक्त बलका प्रयोग न किया जाय। ऐसी शिक्षा अप्राकृतिक एवं अनर्थकारी है। हम राजनैतिक हत्याओंसे घृणा करते हैं, सिर्फ इतना ही नहीं, वरन् इससे भी अधिक, यहाँतक कि हम अन्याययुक्त एवं अनुचित बलप्रयोग

जो उचित कार्यका बाधक हो, उसके प्रति भी घृणा रखते हैं। परन्तु हम उस दशामें चुप नहीं बैठ सकते जब एक उच्च एवं सम्मानित पुरुष हमारे नवयुवकोंसे कहता है कि “ जो मनुष्य हमारे संरक्षणमें हैं उनके सम्मानकी—इज्जतकी रक्षा करनेका मार्ग यह है कि हम अपनेको अत्याचार करनेवालोंके हाथोंमें दे दें। क्योंकि धूसे-बाजी करके सामना करनेकी अपेक्षा यह कहीं बड़ा मानसिक एवं शारीरिक साहस है ”। मान लो कि कोई अत्याचारी हमारी पुत्री पर आक्रमण करता है। मि० गाँधीकी अहिंसा कहती है कि अपनी पुत्रीकी मानरक्षाके लिए केवल आक्रमणकारी और पुत्रीके बीचमें खड़ा हो जाना ही ठीक है। किन्तु उस दशामें क्या होगा, जब आक्रमणकारी हमको गिरा कर अपनी पैशाचिक अभिलाषा पूरी करेगा? मि० गाँधीके कथनानुसार इसकी अपेक्षा कि अपने बलको उसके प्रतिरोधके लिए उपयोगमें लावें, इसमें अधिक मानसिक एवं शारीरिक साहसकी आवश्यकता है। कि ऐसी दशामें भी खड़ा रहे और उसे दुराचार करने दे। मि० गाँधीकी इस मान्यताके कुछ भी अर्थ नहीं हैं। मैं मि० गाँधीके व्यक्तित्वका बहुत आदर करता हूँ। वे उन महात्माओंमेंसे एक हैं जिनका मैं हृदयमें ध्यान करता हूँ। मैं उनकी सहृदयतामें सन्देह नहीं करता। मैं उनकी प्रवृत्तियोंके सम्बन्धमें प्रश्न नहीं करता। किन्तु इसको मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ कि मैं एक जोरदार प्रतिरोध उस अनर्थकारी उपदेशके लिए उठाऊँ जिसके सम्बन्धमें उनके उस उपदेशके दिये जानेकी विज्ञप्ति दी गई है।

गाँधीको भारतके नवीन बच्चोंके मास्तिष्कको ऐसे विषयकी शिक्षा देकर बिगाड़नेका कभी अधिकार न दिया जाना चाहिए।

जातीय विकासको अवरुद्ध करनेकी स्वतन्त्रता किसीको भी न मिलनी चाहिए। न बुद्ध और न ईसाने ही कभी ऐसी शिक्षा दी है। मैं नहीं जानता कि कदाचित् जैन भी इस परिधि तक पहुँचे होंगे। क्योंकि इन दशाओंमें मानसहित जीवन बिताना असम्भव हो जायगा। जिस मनुष्यका ऐसा विश्वास है, वह कभी लगातार किसीका प्रतिरोध—जो अपनी इच्छानुसार काम कर रहा हो—नहीं कर सकता। क्या हम पूछ सकते हैं कि मि० गाँधीने द० एफ्रिकाके श्वेतांगोंका दिल-भारतवासियोंको देश बाहर निकालनेकी परम प्रिय नीतिके प्रतिकूल विरोध खड़ा करके—क्यों दुखाया? तर्कानुसार तो जैसे ही उस देशवालोंने उन्हें देशके बाहर निकालनेकी अभिलाषा प्रकट की थी, वैसे ही उन्हें अपना डेरा-डंडा उठाकर सम्मानपूर्वक खसक आना था और ऐसा ही अपने देशवासियोंसे करनेके लिए कहना उचित था। कारण ऐसी दशामें किसी भी प्रकारका विरोध हिंसाके बराबर ही हो जायगा; क्योंकि सब प्रकारकी शारीरिक हिंसा केवल मानसिक हिंसाका ही विकसित रूप है। यदि किसी चोर, डाकू या शत्रुके दूषण पर विचार करना मात्र पाप है, तो वास्तवमें उनका प्रतिरोध करना उससे कहीं बड़ा पाप है।

यह बात ऊपरी रूपहीमें ऐसी अनुपयुक्त है कि हमें मि० गाँधीकी स्पीचकी रिपोर्टकी सत्यता पर सन्देह करनेकी प्रवृत्ति होती है। परन्तु पत्रोंने स्वतंत्रतापूर्वक इसपर टीका टिप्पणी की है और मि० गाँधीने भी इस समाचारके प्रति कोई विरोध-पत्र नहीं प्रकाशित किया। किसी दशामें भी, मुझे प्रतीत होता है कि मैं चुपचाप नहीं बैठा रह सकता। जब तक स्पीचके आशयका संशोधन एवं पूर्ण कथन न हो

जाय तब तक इस प्रकारकी अहिंसाकी शिक्षा को नवीन भारतके बिना अनुसरण किये हुए ही आविवेचनीय सत्यताकी भाँति रह जाना चाहिए। मि० गाँधी, पूर्ण कल्पनाका संसार रचा चाहते हैं। वास्तवमें वे ऐसा करने और दूसरोंसे कहनेके लिए भी स्वतन्त्र हैं, पर उसी भाँति यह मेरा भी कर्तव्य है कि मैं उनकी गलतियोंको बतलाता चूँ। (मर्यादासे)

चाहे तुम्हारे रास्तेमें कितने ही विघ्न उपस्थित हों और कितनेही दुःख और कष्टोंको तुम्हें भोगना पड़े तो भी सदा प्रसन्नचित्त रहो। उदास और निराश कभी मत होओ। विचारो, जब तकलीफें तुम्हें चारों तरफसे बेर रही हों, उस समय यदि तुम निराश हो जाओगे और अपने चित्तकी प्रसन्नताको खो बैठोगे तो क्या तुम्हारी तकलीफें घट जायगी? कदापि नहीं, उल्टी बढ़ जायगी। तकलीफोंका दुःख कौन कम है, उस पर उदास होकर क्यों अपने दुःखको दुगना करते हो? यदि तुम अभी नवयुवक हो, तो प्रकृतिने तुम्हें हँसमुख बनाया है। यदि तुम देखो कि तुम्हारी लक्ष्मी, कीर्ति, अथवा अन्य किसी वस्तुकी प्राप्तिमें कुछ कठिनाई या कंठक है तो इसे अपने लिए अच्छा समझो। ये कठिनाइयाँ तुम्हारे मार्गमें जानबूझकर डाली गई हैं कि जिससे तुम और अधिक श्रम करो और तुममें सहन शक्ति अधिक बढ़े। यह अच्छा है और जियादा अच्छा है कि तुम तमाम उमर प्रसन्नचित्त रहते हुए श्रम करते रहो, और तुम्हारी इच्छा-ओंकी कभी पूर्ति न हो, बजाय इसके कि आपत्तिके पहले पहल आते ही निराश हो जाओ और वह निराशा तुम्हारे साहस और उत्साहको भंग कर दे और तुम्हारे चित्तकी स्वाभाविक प्रसन्नताको नष्ट कर दे। यदि तुम्हारा स्वभाव नर्म और मुलायम है तो तुम्हें प्रसन्न रहना ही चाहिए। यद्यपि हम भलीभाँति जानते हैं कि निराशा और असावधानताकी अपेक्षा तुम अनेक दुःखोंको सहर्ष सामना कर सकते हो तथापि तुम्हें चाहिए कि निराशाको आशामें बदल दो। उन बातोंका व्यर्थ चिंतन करके अपने समयको नष्ट मत करो जो तुम्हें हासिल नहीं हुई। प्रकृतिने तुम्हें हर्ष और आशाका स्रोत बनाया है, न कि शोक और निराशाका। (—हेल्प)

विश्वास ।

(ले०—श्रीयुत प्रेमी हजारीलालजी ।)

(१)

जिस सुहीतलमें हुई,

विश्वासकी जाज्वल्यता !

सूखते देखी नहीं,

उसकी कभी आशालता !

डूबते हृदयोंको देता,

है बहुत ऊपर उठा ॥

दान करता है निराशों-

को बड़ी उत्फुल्लता ॥

(२)

कार्यकृत होता नहीं,

जिसमें नहीं विश्वास है ।

काम करनेके लिए,

उसको बड़ा अवकाश है ॥

धर्मकी है जड़ यही,

यह नीतिका भी प्राण है ।

वीरजनका बाहुबल है,

साधुओंका ज्ञान है ॥

(३)

सिंहको बकरी लखे,

बकरा बने बनकेसरी ।

रेतमें बिन तोयके,

रक्खे सदा खेती हरी ॥

नास्तितता यदि व्यक्तियोंकी,

स्वप्नरक्षक हो तो हो ।

जातियाँ विश्वास बिन,

सर्वस्व ही देती हैं खो ॥

तीर्थोंके झगड़े कैसे मिटें ?

(लेखक—श्रीयुत वाडीलाल मोतीलाल शाह ।)

दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायोंमें तीर्थकरोंकी मूर्ति पूजा जाती है और दोनों ही इसे पुण्यकार्य समझते हैं । परन्तु दोनोंकी पूजाविधिमें थोड़ीसी भिन्नता है । एक सम्प्रदायवाले भगवानकी मूर्तिको सब प्रकारके परिग्रहसम्बन्धसे रहित रखते हैं और दूसरी सम्प्रदायवाले उसे आँगी चक्षु आदि लगाकर पूजते हैं । इस साधारण भिन्नताके कारण दोनों ही सम्प्रदायवाले एक दूसरेको झूठा और उन्मार्गी सिद्ध किया करते हैं । इस कार्यके लिए अभीतक समाचारपत्र और व्याख्यान आदि साधन काममें लाये जाते थे, परन्तु जब इनसे सन्तोष न हुआ तब इस कार्यमें दोनोंने रुपयोंकी सहायता लेना शुरू कर दी है और इस तरह अब ये रुपयोंके द्वारा अपने अपने धर्मको विजयशाली बनाना चाहते हैं ।

सम्मेदशिखर, अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ, मक्सी, तारंगा आदि पवित्र-स्थानोंमें आजकल यही हो रहा है । प्रत्येक पक्षवाला यही कहता है कि इन तीर्थों पर केवल हमारा ही हक है और हमारी ही पद्धतिसे यहाँ उपासना-पूजा होनी चाहिए । इसके लिए कई मुकद्दमें दायर हैं जो वर्षोंसे चल रहे हैं और उनके लिए लाखों रुपया भोले भाईयोंसे इस तरह वसूल किया जाता है; मानों इन मुकद्दमोंसे तीर्थकरोंके धर्मका प्रचार या प्रभावना ही हो रही हो । अब तक दोनों पक्षवालोंके इस काममें कई लाख रुपये लग चुके हैं और ये उस समय खर्च हुए हैं जब स्वयं जैनी ही दुःख, दरिद्रता,

भूख और अज्ञानसे मर रहे हैं और उनके लिए किसीकी आँखमें दो बूँद आँसू भी नहीं आते । पर इन मुकद्दमोंमें अब तक कोई पक्ष न जीता है और न हारा है ! हजारों पर पानी फेर कर एक पक्ष एक कोर्टसे जीतकर सर्टिफिकेट लेता है, पर दूसरीमें हार जाता है और तब यहाँ वहाँसे रुपयोंका बल एकट्ठा करके तीसरी कोर्टमें जानेके लिए कमर कसता है । जो लोग इस कामके अगुए-लडुनेके लिए उत्तेजित करनेवाले-हैं, वे प्रायः धर्मान्ध हैं और 'भुसमें चिनगी डाल जमालो दूर खड़ी' वाली कहावतको चरितार्थ करते हैं । भोले भक्तोंके पैसोंकी होली जलती है और ये दूर खड़े रहकर तापते हैं । अभी हाल ही मैंने सुना है कि बम्बईमें दिगम्बर जैनोंकी सभा हुई और उसमें बातकी बातमें सम्मेदशिखरके मुकद्दमोंके लिए ६०-७० हजारका फण्ड हो गया ! इस समय कोई आठ महीनेसे दिगम्बरियोंका लगभग दश हजार रुपये मासिकके हिसाबसे सम्मेदशिखरके मुकद्दमोंमें खर्च हो रहा है ! उधर श्वेताम्बर भाईयोंकी 'आनन्दजी कल्याणजी' की कोठी जब तक बरकरार है तब तक कोर्टोंके और वकील ब्रैरिस्ट्रोंके लिए तो चिन्ता करने या चन्दा करनेका कोई कारण ही नहीं है । उनका तो सब तरहसे आनन्द और कल्याण है । परन्तु इन प्रयत्नोंसे जैनधर्मका या श्वेताम्बर दिगम्बर सम्प्रदायका क्या कल्याण होगा, यह कोई नहीं बतलाता । क्या अदाल-

तोसे इन झगड़ोंका निबटेरा हो सकता है? अथवा अदालतें 'न्याय' कर सकती हैं? कभी नहीं, और इसकी साक्षात् प्रत्येक विचारशील जैनी दे सकता है। 'बालकी खाल निकालनेवाली' वर्तमान न्यायपद्धति ऐसी विलक्षण है कि उसके द्वारा जो कार्य 'अपराध' सिद्ध हुआ है वही 'हक' सुबूत किया जा सकता है! यह न्याय तुम्हारे हकों पर नहीं किन्तु वकील बैरिस्ट्रोंकी चतुराई, न्यायाधीशकी विचारशक्ति और झुकावट पर अवलम्बित है। जिस पक्षको अपने मुकद्दमोंकी सत्यतामें सोलह आने विश्वास है वह भी यह आशा नहीं कर सकता कि अदालतमें हमारी जीत अवश्य होगी। ऐसी दशमें सच झूठका फँसला उक्त सन्दिग्ध और खर्चाली न्यायपद्धतिके द्वारा करानेका पागलपन छोड़कर समझमें नहीं आता कि कोई सीधा सरल और बिना खर्चका उपाय क्यों नहीं किया जाता। क्या जैन समाजकी चिरप्रसिद्ध व्यापारी बुद्धि पर पत्थर ही पड़ गये हैं जो वह और कोई अच्छा मार्ग नहीं खोज सकती? कहा जाता है कि यदि रावणके यहाँ कोई चतुर वैश्य सलाहकार होता, तो उसका राज्य नष्ट नहीं होने पाता। वर्तमानके जैनी उसी वैश्यजातिके ही तो वंशधर हैं; फिर आज ये अपने ही राज्यको और सो भी धर्मसम्बन्धी राज्यको बचानेके लिए रावणकी सहायता क्यों चाहते हैं? भाइयो! इस काममें तुम्हें स्वयं प्रकृति (कुदरत) ही सफल न होने देगी। प्रकृति माता दयालु नहीं पर न्यायप्रिय है, इस लिए वह तुम्हें इन हार जीतकी बाजियोंमें ही कंगाल और फटेहाल करके फेंक देगी। बतलाओ तो सही, तो तुम यह लाखों करोड़ोंकी बरबादी किस बिरते पर कर रहे हो? इससे तुम्हारे कौनसे उच्च आशयकी सफलता होगी? तुममें-

से जो एक जीतेगा उस जीतसे क्या उसका धर्म वास्तवमें सत्य ठहर जायगा? अरे अज्ञानियो! यह उसके 'धर्म' की नहीं, पर 'पैसे' की जीत समझी जायगी और धर्मकी सत्यताका निर्णय होना तो करोड़ोंका खर्च कर चुकने पर-भी बाकी ही रहेगा! और फिर न्यायप्रिय सज्जन तो दोनोंको अधर्मी कहेंगे। क्योंकि तीर्थंकर महात्माओंने-जिन्हें दोनों ही पूज्य मानते हैं-इन द्वेषकार्योंको अधर्म ही कहा है।

जो श्वेताम्बरसमाज विद्याप्रचारके लिए गत सात वर्षोंसे वार्षिक दो हजार रुपया खर्च करनेके लिए भी इधर उधर ताकता है, वही समाज सम्मोदशिखर पर दिगम्बरोंको पूजा न करने देनेके पुण्यकार्यमें दो चार लाख रुपयोंका पानी बना सकता है और जो दिगम्बरसमाज स्वार्थत्यागी पण्डित पन्नालालजीके शास्त्रोद्धार-कार्यके लिए अथवा स्वयंसेवक पं० अर्जुनलाल-जी सेठीके लुटकारेके आन्दोलनके लिए दशबीस हजार रुपया खर्च करना कठिन समझता है, वही इन पहाड़ोंके मुकद्दमोंमें लाखों रुपया पानीकी तरह बहा रहा है। अफसोस! भाइयो! क्या तुम अपने इन्हीं कामोंसे अपने पड़ोसी अजैन भाइयोंकी नजरमें ऊँचे चढ़ोगे? दूसरे लोग तुम्हारी मूर्खता पर हँसते हैं, तुम्हारे धनकी बरबादी होती है, तुम दोनों एक बापके दो बेटे हो तो भी तुममें दिनों दिन द्वेष बढ़ता जाता है, और तीव्र कषायके वशवर्ती होकर तुम दोनों ही कर्मबन्ध करते हो। ये सब हानियाँ अन्धेसे अन्धेकी भी आँखें खोलनेके लिए काफी हैं। इसके सिवाय एक और बड़ी भारी हानि इससे यह हो रही है कि जिस समय भारतके तमाम सुपुत्र और विदेशी होनेपर भी अपनी न्याय-प्रियताके कारण भारतका पक्ष लेनेवाले ब्रिटिश सज्जन स्वराज्यकी माँग सदाकी अपेक्षा अधिक

जोरदार आवाजसे करने लगे हैं, उस समय लगभग ८-१० लाख जैनधर्मानुयायी भारत-वासी अपने इस आचरणसे यह बतला रहे हैं कि हम लोग अपना धार्मिक और सामाजिक राज्यतंत्र भी स्वयं नहीं चला सकते हैं—विदेशी विधर्मी सरकारको बीचमें डाले बिना हमारा काम ही नहीं चल सकता है। हमारा यह कार्य हमारी स्वराज्यसम्बन्धी आशा पर निराशाका काला बादल छा देता है।

हमारे जैनभाइयोंको चाहे जिस तरह हो—चाहे जो हानि उठाकर हो, यदि जीत ही प्राप्ति करनी है, तो उन्हें कोर्टोंसे तो जीतकी आशा छोड़ ही देना चाहिए—वहाँसे वह तो मिल ही नहीं सकती है। अब रहे और और मार्ग, सो उनमेंसे एक तो यह है कि दोनों पक्षके मुखियाओंको झगड़ेके स्थानोंमें विराजमान रहनेवाले भगवानके आगे तपस्या करनेके लिए बैठ जाना चाहिए और अपनी तपस्याके जोरसे भगवानको बुलाना चाहिए तथा कहना चाहिए—“प्रभो! तुम्हारे लिए तो हम लड़लड़कर थक गये और तुम दया-मयारहित होकर सिद्धलोकमें जा छुपे हो! दया करके थोड़ी देरके लिए तो यहाँ आ जाओ और बतला दो कि इस स्थानपर पूजा करनेका हक किसको है? साथ ही साथ यह भी बतला दो, जिससे आगे पुराने ग्रन्थोंके लौटने-पलटनेकी और सुबूत ढूँढ़नेकी खटखटसे भी बृद्धी मिल जाय—कि पहले श्वेताम्बर हैं या दिगम्बर? ” जब तक भगवान् सिद्धशिला छोड़कर न आवें और सुलासा न कर जायँ तब तक दोनों ही पक्षवाले तपस्या करते रहें। इससे एक तो लोगोंके रूपयोंका पानी बनना बन्द हो जायगा और कदाचित्, भगवानने पधारनेकी या सुलासा करनेकी कृपा नहीं की, तो जिन

लोगोंकी आयु तपस्या करते करते पूर्ण हो जायगी वे सब स्वर्गलाभ करेंगे!

यदि हमारे भाइयोंमें इतना धैर्य न हो, वे झटपट इस पार या उस पार ही हो जाना चाहते हों, तो उनके लिए दूसरा रास्ता यह है कि दोनोंको आमने सामने आकर इस तरह लड़ना चाहिए कि उससे हारनेवाले और जीतनेवाले दोनोंही अन्तमें लाभमें रहें। यह लड़नेकी रीति उसी प्रकारकी होनी चाहिए जैसी मन्दिरोंमें आरतीके घीकी या फूलमाल आदिकी बोली बोलते समय काममें लाई जाती है। जिस स्थलपर झगड़ा हो उस स्थलके पूजा करनेके हककी बोली बोलो। यह बोली एक लाखसे कम रकमसे शुरू न होनी चाहिए और एक बोलीमें पच्चीस हजारसे कमकी रकम आगे न बढ़ानी चाहिए। जो पक्ष सबसे अधिक रकम दे उसीको पूजा करनेका स्वतंत्र हक दिया जाय और यह रकम दोनों समाजोंके युवकोंकी शिक्षावृद्धिमें खर्च की जाय।

यदि यह मार्ग पसन्द न हो तो अन्तमें तीसरा और अतिशय महत्त्वका मार्ग यह है कि भारतके जितने प्रसिद्ध प्रसिद्ध नेता हैं उनमेंसे किसी एकको अथवा दोको पसन्द करके उनके हाथमें यह मामला दे देना चाहिए और वे जो कुछ फैसला करें उसे हमेशाके लिए स्वीकार कर लेना चाहिए। लोकमान्य श्रीयुत बालगंगाधर तिलक और महात्मा गाँधी आदि सज्जन ऐसे हैं कि इनके द्वारा पक्षपात या अन्याय नहीं हो सकता। ये दोनों ही पक्षवालोंको सन्तुष्ट कर सकेंगे। जैनसमाजके गौरवको रक्ष सकेंगे और भारतके हितकी रक्षा कर सकेंगे। इस अन्तिम सूचनाको माननेके लिए जो तैयार न हों, उन्हें पक्का देश-

द्रोही समझना चाहिए। हमारी समझमें जिन्हें गाँधी और तिलक जैसे पुरुषरत्नों में विश्वास नहीं है अथवा उनकी सम्मतिकी परवा नहीं है, उन्हें भारतवासी ही नहीं कहना चाहिए।

उक्त दोनों ही सज्जन धर्मात्मा हैं, मूर्तिपूजाको भी मानते हैं और देशके गौरवको बढ़ानेके लिए तो प्राणोंको हथेली पर लिये फिरते हैं। कानूनका ज्ञान भी इन्हें जजोंकी अपेक्षा कम नहीं है और साथ ही सत्यके एकनिष्ठ सेवक होनेके कारण किसी ओरको लुढ़क जानेवाले भी ये नहीं हैं। दोनों ही सम्प्रदायके विचारवाच सज्जनोंको इस विषयमें आन्दोलन करना चाहिए और भाई भाईकी इस आपसी लड़ाईको मिटानेका पुण्य सम्पादन करना चाहिए।

महात्मा गाँधी इतने उदार और निरभिमानी हैं कि उन्हें ऐसे कामोंके लिए आमंत्रणकी भी आवश्यकता नहीं रहती है। इस लिए मैं उनसे आग्रहपूर्वक प्रार्थना करता हूँ कि हमारे जैन भाई यदि आपको बीचमें पड़कर न्याय कर देनेके लिए आमंत्रण न करें, उनमें इतनी भी सुबुद्धि न रही हो, तो आपको स्वयं ही देशके गौरवके लिए और देशकी एक प्रतिष्ठित कौमकी अवनतिको रोकनेके लिए—स्वेच्छापूर्वक बीचमें पड़नेकी कृपा करना चाहिए।

‘समयके फेरतैं सुमेरु होत माटीको’ इस कथन की सत्यता इस मामलेमें प्रत्यक्ष हो रही है। एक ऐसा भी समय था जब गुजरातकी कीर्तिको दूर दूर तक फैलानेवाला और मुसलमानोंके प्रबल आक्रमणोंके वेगसे माण्डलिक राजाओंके आपसी झगड़ोंके रहते भी गुजरातको बालबाल बचा लेनेवाला पुरुष एक जैन था और वह पाटणका मंत्री मुंजाल था। यह २५-३० वर्षका युवा अनेक झगड़ों फसादों स्वार्थजालों और उपद्रवोंकी बड़ी दूरदेशी और शक्तिसे दबा सकता था और सारे गुजरातमें अमनचैन रख सकता था और एक यह भी समय है जब आठ-

दश लाख श्वेताम्बर दिगम्बर जैनोमेंसे— बड़े बड़े व्यापारकुशल, वयोवृद्ध और पढ़े लिखे जनोमेंसे—एक मामूली और घरू झगड़ेको भी मिटानेवाला कोई पुरुष आगे नहीं आता। समय! तेरी बलिहारी!

अन्तमें, जिन जिनेन्द्रदेवकी पूजाके ठेकेके लिए यह सोनेकी नदी बहाई जा रही है, वे यदि थोड़ी देरके लिए मुक्तिपुरीका आनन्द छोड़कर सुन सकते हों, तो उनके चरणोंमें मेरी यह प्रार्थना है कि “ हे भगवन्! ऐसा समय ला दो कि हम अपने भाईयों और पुत्रोंसे तो हार जायँ— इसे बुरा न समझे और अपने शत्रुओंको हरानेके लिए हर समय तैयार रहें—प्रकृत शत्रुओंको हरानेमें ही अपना गौरव समझें। ”

मनुष्यको बहुतसा दुःख इस कारणसे होता है कि वह प्रायः सदा इसी बातकी चिन्तामें रहता है कि लोग मेरे विषयमें क्या कहते हैं। यह फिजूलका ख्याल है। इस ख्यालमें पागल बने रहना मुखता है। जरा सोचो तो कि तुम्हारे कामोंका जो कुछ वे कहते हैं उससे कुछ सम्बंध भी है या नहीं। इसके अतिरिक्त यह भी निश्चय नहीं है कि वे तुम्हारे विषयमें कुछ कहेंगे भी या नहीं। कितने ही आदमी यह ख्याल करते रहते हैं कि हमारे कामोंकी दुनिया देख रही है, परंतु उन्हें देखता कोई नहीं। वे सोचते हैं कि हरएक राहगीरकी हम पर दृष्टि पड़ती है, परंतु यह केवल ख्याल है। अस्तु मान लो कि यह ख्याल नहीं किन्तु सत्य है, वास्तवमें लोग तुम्हारे विचारों और कार्योंकी झूठी निंदा करते हैं और तुम्हारे विषयमें अनुचित सम्मति रखते हैं; परन्तु इससे क्या? किसीने टीक कहा है कि दूसरेके बुरा कहनेसे तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ता। यदि तुम वास्तवमें निर्दोषी हो तो दूसरोंकी कड़ी समालोचनासे तुम्हें उतनाही दुःख होना चाहिए जितना कि तुम्हें उस समय होता, जब कि किसी ऐसे मनुष्यकी वही समालोचनाकी जाती जिससे तुम तनिक भी परिचित नहीं हो, अर्थात् तुम्हें रंच मात्र भी दुःख नहीं होना चाहिए। (—हेल्स)

तीन देवियोंका संवाद ।

[ले०, श्रीयुत बाबू मित्रसेनजी जैन ।]

१ लक्ष्मी:—

(१)

खबरदार कोई चूँ मत करना, मेरा है संसार ।
मेरा ही अधिकार जगतमें, मैं ही हूँ सर्दार ॥
बड़े बड़े गढ़ कनक भवन सब, मेरे ही हैं खेला ।
फैल रही है अखिल लोकमें, मेरे यशकी बेल ॥

(२)

आँख उठाकर जिसको देखूँ, दममें हो खुशहाल ।
कृपा बिना मेरी फिरते सब, भूखे औ कंगाल ॥
बड़े बड़े विद्वान वीर वर, रटते मेरा नाम ।
चलता है मेरे ही बल पर, सारे जगका काम ॥

(३)

जर्मन अमरीकाको देखो, ब्रिटिन चीन जापान ।
मेरी चरण-रेणुको पाकर, कहलाते धनवान ॥
वहाँ राकफेलर जैसे हैं, अगणित मेरे दास ।
यहाँ बिना मेरे भारतके, होते नित्य उपास ॥

(४)

एक समय भारतने मेरा, किया बहुत अपमान ।
इससे देखो आज बना यह, घोर दुःखकी खान ॥
चलो हटो सब, यह निश्चित है, मैं सबकी सरताज ।
मेरी नाममालिकाको ही, फेरे सकल समाज ॥

२ शक्ति:—

(५)

यह क्या, यह क्या, क्या बकती है ओ गरबीली नार ।
क्या तू बस हो गई बड़ी, कर लेनेसे शृङ्गार ॥
झूठ सरासर बकनेवाली, मत कर तू अभिमान ।
मेरे आगे खड़ी न होना, दिखलाने अज्ञान ॥

(६)

नहीं जानती जिस दिन मेरी, कुटिल भवै चढ़ जाती ।
तू दबती फिरती है सम्मुख, मेरे कभी न आती ॥
मैं इक छिनमें सारे जगको, तहस-नहस कर डाँटूँ ।
चाहे जिसे बनाऊँ राजा, चाहे जिसे निकाँटूँ ॥

(७)

है प्रत्यक्ष आज यूरप पर, हुआ हमारा कोप ।
तनिक सोच तेरी प्रभुताका कहाँ होगया लोप ॥
जर्मन और ब्रिटिश राजोंमें, निकल पड़ी तलवार ।
लाखों इस नरमेधयज्ञमें, हुए, हो रहे छार ॥

(८)

मैं कृपालु जब थी भारत पर, लाखों थे वरवीर ।
अब तक रहे प्रताप शिवाजी, पृथ्वीसे रणधीर ॥
बस इस जगपर मेरा ही है, एकछत्र अधिकार ।
खबरदार अब आगे बढ़ कर, नहीं बढ़ाना रार ॥

३ विद्या:—

(९)

ठहरो, ठहरो, दोनों मिलकर, व्यर्थ लड़ाई न ठानो ।
हटो, काम लो तनिक बुद्धिसे, बात हमारी मानो ॥
लक्ष्मी ! तुम हो बड़ी चंचला, गंभीरता नहीं है ।
और, शक्ति ! तुममें विचारनेकी योग्यता नहीं है ।

(१०)

देखो लक्ष्मी ! एक दोष है, तुममें अतिशय भारी ।
तुमको चोर चुरा ले जाते, चलती एक न प्यारी ॥
तुम रहती हो जहाँ वहाँ पर, दोष फेलते सारे ।
नित्य लड़ाई होती, होते बन्धु बन्धुसे न्यारे ॥

(११)

मैं हूँ अति गंभीर चोर भी नहीं चुराने पाता ।
जितना करो दान मेरा धन, दूना बढ़ता जाता ॥
तुम भी सुनो शक्ति ! सब जगको, मैं सभ्यता सिखाती ।
तू मनुष्यको नरक दिखाती, मैं सुरपुर ले जाती ॥

(१२)

उदाहरणमें देती हो तुम, यूरप-रणको मान ।
पर इतना तो सोच वहाँ क्या, तेरी ही है शान ॥
व्योमयान, तोपें, जो करतीं, अगणित नर संहार ।
अद्भुत रणकौशल आदिक ये, किसके हैं व्यापार ॥

(१३)

तेरा बड़ा गर्व लख मैंने, यह करतब फैलाया ।
यूरपके इस महायुद्धमें, नीचा तुझे दिखाया ॥
हम तुम तीनों बहन जहाँ है, वहाँ पुण्य सुरधाम ।
वहीं बुद्ध औ महावीर हैं, वहीं कृष्ण औ राम ॥

विविध प्रसङ्ग ।

१ लाला लाजपतराय और जैनधर्म ।

पंजाबके सुप्रसिद्ध देशभक्त लाला लाजपतरायजीका नाम बहुत कम लोग ऐसे होंगे जो न जानते हों। आप इस समय आर्यसमाजी हैं, पर आपका जन्म एक (स्थानकवासी) जैन-कुलमें हुआ था—आपके पिता पितामह आदि सब जैनधर्मके अनुयायी थे। यह बात स्वयं आपके लिखे हुए एक लेखसे प्रकट हुई है जो कलकत्तेके 'माडर्न रिव्यू' में प्रकाशित हुआ है और जिसका अनुवाद हमने अन्यत्र उद्धृत किया है। उक्त लेख मुख्यतः महात्मा गाँधीके विचारोंको लक्ष्य करके लिखा गया है; परन्तु गौणरूपसे उसमें जैनधर्मकी अहिंसाकी आलोचना भी की गई है। क्योंकि महात्मा गाँधीके विचार जैनधर्मके आचार-शास्त्रोंसे बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। परन्तु हमारी समझमें लालाजीने सिर्फ जैनधर्मके वर्तमान स्वरूपकी—अहिंसाधर्मके उस अत्याचारकी—जो जैनधर्मके वर्तमान अनुयायियोंमें दृष्टिगोचर होता है और जिसमें लोग जैनोंका नहीं किन्तु जैनसिद्धान्तका दोष समझ लेते हैं—आलोचना की है। अहिंसाको वे सर्वोत्कृष्ट जीवनचर्या या चारित्र्य मानते हैं; परन्तु उसके दुरुपयोग या अत्युपयोगको ही अच्छा नहीं समझते हैं। वे कहते हैं—कि अन्य सत्य आदि सद्गुणोंके समान यह भी एक सद्गुण है; यह नहीं कि तमाम सद्गुणोंका शिरोमणि यही है और सच्चारित्रिकी कसौटी भी यही एक है। जैनसिद्धान्त भी आपके इन विचारोंसे सहमत है। श्रावकोंके जो पाँच अणुव्रत हैं या मुनियोंके पाँच महा

व्रत हैं उनमें जो दर्जा अहिंसाका है वही शेष चारका अर्थात् सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रहका है। यह नहीं कि श्रावकको सिर्फ अहिंसाका पालन करना ही जरूरी है सत्य आदिका नहीं, अथवा अहिंसाके बराबर सत्य आदिकी पालना आवश्यक नहीं है। जैनसिद्धान्तके अनुसार श्रावक या गृहस्थके जो आठ मूल गुण हैं—जिनका पालना प्रत्येक गृहस्थके लिए बहुत ही जरूरी है—उनमें ये पाँचों व्रत एक समान आवश्यक हैं। एक सुप्रसिद्ध जैनाचार्यने एक अहिंसाव्रतको ही आचारशास्त्रका मूल माना है और सत्य ब्रह्मचर्य आदिको उसके ही भेदोंमें गिनाया है। वे कहते हैं कि असत्य भी पाप इसी कारण है कि उससे अपने या पराये प्राणोंकी—द्रव्य या भावरूप हिंसा होती है—उससे दूसरोंको या अपनेको एक प्रकारका कष्ट पहुँचता है। इसी तरह परस्त्रीसेवन आदि भी हिंसाके कारण हैं। गरज यह कि हिंसाको छोड़कर और कोई पाप ही नहीं है। परन्तु पापपुण्यकी इस विलक्षण व्याख्यामें भी जो साक्षात् अहिंसा है उसका दर्जा सत्य या ब्रह्मचर्य आदि किसी भी व्रतसे बड़ा नहीं है और इसी प्रकार छोटा भी नहीं है। जैनधर्म यह नहीं कहता कि तुम हरितकायके जीवोंकी तो रक्षा किया करो और व्यवसाय वाणिज्य आदिमें मनमाना असद्भावहार किया करो। पर वर्तमान जैनसमाजका चारित्र्य इसी ढंगका हो रहा है जैसा कि लालाजीने बतलाया है और इस प्रकारके एक नहीं हजारों उदाहरण दिये जा सकते हैं। पर यह दोष जैनसिद्धान्तका या उसके अहिंसा धर्मका नहीं है।

कठिनाई यह हो रही है कि जैनधर्मकी अहिंसाका स्वरूप लोगोंने कुछका कुछ समझ लिया है और उसी समझके अनुसार उस पर आक्षेप किये जाते हैं। पर यह आक्षेप—कि जैनधर्मकी अहिंसाने लोगोंको निर्बल साहसहीन या कर्तव्यच्युत बना दिया—वैसा ही भित्तिहीन है जैसा कि जैनधर्मको बौद्धोंकी शाखा माननेका विश्वास था। एक दिन आयगा जब लोग अपने इस भ्रमको जैन और बौद्धसम्बन्धी भ्रमके ही समान छोड़नेके लिए लाचार होंगे। जैनधर्मने अहिंसाको इस ढंगसे साधा है कि उसकी पालना किसी भी अच्छे कार्यमें रुकावट नहीं डाल सकती है। एक पक्का जैनी सबलोंके हाथसे निर्बलोंकी रक्षा करनेके लिए, और न्यायकी उच्चता कायम रखनेके लिए बड़ेसे बड़ा युद्ध कर सकता है, लाखों आदमियोंका खून बहा सकता है, बड़ेसे बड़े कलकारखाने खोल सकता है, कृषि जैसा हिंसापूर्ण कार्य कर सकता है और यह सब करके भी वह अपने दर्जेसे नहीं गिर सकता है। इस तरहकी कथाओंसे-जिनमें श्रेष्ठ गिने जानेवाले जैनक्षत्रियोंने भीषण युद्ध किये हैं और फिर भी वे स्वर्गवासी हुए हैं—जैनसम्प्रदायके पुराणग्रन्थ तो भरे हुए हैं ही, साथ ही भारतवर्षके प्रामाणिक इतिहासमें भी ऐसे दृष्टान्तोंकी कमी नहीं है। विक्रमकी नौवीं शताब्दिमें राष्ट्रकूटवंशके सुप्रसिद्ध महाराजा अमोघवर्ष (प्रथम) जिनका राज्य उत्तरमें विन्ध्याचल तथा मालवा तक और दक्षिणमें तुङ्गभद्रातक फैला हुआ था, बड़े भारी योद्धा थे। उन्होंने चालुक्य गंग आदि अनेक वंशके राजाओंको युद्धमें मारा था। दक्षिणके अनेक शिला लेखोंमें उनकी वीरताके गीत मौजूद हैं। इस वंशमें और भी कई जैन राजा हुए हैं जो बड़े बहादुर थे। श्रवणबेलगुलकी प्रसिद्ध बाहुब-

लिस्वामीकी प्रतिमाके बनवानेवाले और गोम्मटसार सिद्धान्तकी 'कर्नाटकी वृत्ति' लिखनेवाले चामुण्डराय भी बड़े वीर थे। वे गंगवंशीय राजा राचमल्ल (ई०९८४-९९९) के मंत्री थे। उनकी समरधुरंधर, वीरमार्तण्ड, रणरंगसिंह, वैरिकुलकालदण्ड, सगरपरशुराम, प्रतिपक्षराक्षस आदि पदवियाँ ही उनकी न्यायोचित हिंसाप्रियता या युद्धपटुताकी गवाही दे रही हैं। गोविन्दराज, बेंकोटुराज आदि अनेक राजाओंको उन्होंने युद्धमें हराया था। इस पर भी ये जैनधर्मके अन्यतम श्रद्धालु और चरित्रवान् थे और इस कारण सम्यक्त्वरत्नाकर, सत्ययुधिष्ठिर, शौचाभरण आदि उच्च श्रद्धा-चारित्रसूचक पदवियोंसे विभूषित थे। इनके सिवाय कर्नाटकमें नागवर्म, जन्न, पंप, कीर्तिवर्मा आदि बीसों कनड़ी कवि ऐसे हुए हैं जो अनेक जैनग्रन्थोंके कर्ता होने पर भी मंत्री, सेनापति, राजा आदि युद्धव्यवसायी रहे हैं। गृहस्थोंमें तो ठीक ही है; वहाँ तो कई जैनसाधुतक ऐसे हुए हैं जो राजाओंके यहाँ कटकपोध्याय या युद्धविद्याके शिक्षक रहे हैं। इन बातोंको सविस्तार जाननेके लिए हमारे लिखे हुए 'कर्नाटक-जैन कवि' या कनड़ीभाषाके 'कर्नाटककविचरित्र' को देखना चाहिए। अभी अभीतक जैनोंमें युद्धव्यवसायी रहे हैं। जैनहितैषीके पिछले अंकोंमें बच्छावत भंडारी आदि जैनकुलोंका इतिहास प्रकाशित किया गया है, उससे इस बातका खासा प्रमाण मिलता है। ये लोग राजपूतोंके ही समान वीर थे और अनेक युद्धोंमें लड़े थे। राजपूतानेके जयपुर आदि राज्योंमें जैनमंत्री अबतक रहे हैं और उनमें अनेकोंने बहादुरीके कार्य किये हैं। ये सब उदाहरण यह जाननेके लिए काफी हैं कि जिस प्रकार शत्रुसे अपनी या अपने आश्रितोंकी

रक्षा करना हिन्दुओंका धर्म रहा है, जैनोंका भी उससे कम नहीं रहा है। ऐसी दशामें जैनधर्मकी अहिंसाको निर्बलताका या कायरताका बीज बतलाना जैनधर्म पर अन्याय करना है।

जैनधर्मका नीतिशास्त्र यह कदापि नहीं सिखलाता है कि तुम अपनी बहिन बेटियोंपर अत्याचार होते हुए देखो और चुपचाप खड़े रहो, अथवा अपने शत्रुओंसे स्वयं अपनी या अपने भाईयोंकी रक्षा मत करो। उसकी दृष्टिमें भी दुष्टता, अन्याय, अत्याचारोंको होते रहने देना और सहन करते रहना अप्रत्यक्ष रूपसे उन्हें सहायता करना है। इसी लिए एक जैनराजा या न्यायाधीश सैकड़ोंको फाँसी दे सकता है और फिर भी निर्दोष रहता है। जैनसिद्धान्तमें अहिंसाके अनेक भेद किये गये हैं। केवल हिंसाके लिए ही हिंसा करना अर्थात् संकल्पी हिंसा करना ही सबसे निन्द्य और त्याज्य हिंसा है। इसी लिए जैनहितेच्छुके विचारशील सम्पादक महाशयने लिखा है कि “जैन लड़ते अवश्य हैं; परन्तु तुच्छ प्राप्तियोंके लिए या हिंसानुद्धिसे लड़नेमें वे गौरव नहीं समझते और इस लिए उस तरह लड़नेमें वे पाप मानते हैं या ‘हिंसा करना’ समझते हैं। कोई खास जरूरत पड़ने पर, किसी महान् उद्देश्यकी सफलताके लिए ही वे लड़ते हैं और धैर्यसे अप्रमत्त होकर उच्च दयाको दृष्टिबिन्दु बनाकर लड़ते हैं। कत्ल करना या हत्या करना जैनोंका आशय नहीं होता; परन्तु यदि कत्ल स्वयं चल करके आरही हो, या उसके आनेकी संभावना हो, तो उसे रोकनेके लिए वे लड़ेंगे और अवश्य लड़ेंगे; फिर चाहे उस लड़ाईमें वे मरें या दूसरे मरें इसकी उन्हें परवा नहीं रहती। सब्जे जैन शरीर पर ममता नहीं रखते—शरीरके लालन पालनकी दृष्टिसे न वे कोई काम

केरत हैं और न किसी कामको बन्द रखते हैं। जैनश्रावकके अहिंसाव्रतमें एक शर्त मुख्य है—उसे इच्छापूर्वक मारनेके लिए मारनेका और निरपराधीके मारनेका त्याग रहता है। उच्च आशयके विना वह किसीको नहीं मारता।” गरज यह कि अहिंसाधर्म किसीको निर्बल या कायर नहीं बनाता है और न अहिंसाका वह अर्थही है जो लोगोंने समझ रक्खा है।

तब वर्तमान जैनोंकी निर्बलता और कायरताका उत्तरदाता कौन है? जैनधर्म? कदापि नहीं। जैनधर्मकी अहिंसाको जैनोंके कायर या निर्बल होनेमें कारण मानना वैसा ही है जैसा भगवान् श्रीकृष्णकी गीताको वर्तमान हिन्दुओंकी निर्बलताका कारण मानना। गीता जैसी कर्मवीरता सिखलानेवाली शिक्षाके रहते हुए भी यदि हिन्दू हजार वर्षसे पददलित हो रहे हैं तो जैनधर्मकी अहिंसाके सर्वथा निर्दोष होने पर भी जैनोंका निर्बल होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। इसके कारण ही कुछ और हैं जिनपर विचार करना इस देशके मनीषी विद्वानोंका काम है। वास्तवमें इसमें न जैनधर्मका दोष है और न हिन्दू धर्मका। जैनहितेच्छुके सम्पादक महाशयने ठीक ही कहा है कि “आज जैनधर्म और वेदधर्म दोनों मौजूद हैं। जैनधर्मके निश्चयनयके शास्त्र भी रक्खे हैं और पूर्णावतार कृष्णकी गीता भी कहीं चली नहीं गई है; तथापि जैन और हिन्दू दोनों ही प्रायः निर्माल्य—निकम्मे हो रहे हैं। दश बीस सम्माननीय अपवादोंको छोड़कर सारा भारतवर्ष आज अध्यात्मिक निर्बलतामें फँसा हुआ है। शक्ति मैया—The Will to Power—जीवनका यह सत्त्व—मनुष्योंका यह आत्मा—आत्माका यह धर्म—आज भारतमेंसे रूठ कर चला गया है। इसमें न गीताका दोष है और न जैनशास्त्रोंका।”

अन्य पदार्थोंके समान धर्म भी सदा एकसा नहीं रहता। उसमें भी समयके अनुसार परिवर्तन हुआ करते हैं और कभी कभी वे परिवर्तन इस सीमातक पहुँच जाते हैं कि उन्हें देखकर मूल धर्मकी कल्पना भी नहीं की जासकती। बौद्ध धर्मके तांत्रिक साहित्यको देखकर—उसकी अश्लीलतापूर्ण क्रियायें पढ़कर—क्या कोई कल्पना कर सकता है कि इसका मूल वही उन्नत धर्म है जिसका प्रचार महात्मा बुद्धने किया था? हमारा विश्वास है कि भगवान् महावीरका उपदेश किया हुआ जैनधर्म भी समय और देशकी परिस्थितियोंकी चोटें खाकर बहुत कुछ परिवर्तित हुआ है। उसका असली महत्त्वका रूप दूसरे विकृत आडम्बरोंके भीतर छुप गया है। उसके साहित्यकी भी यही दशा हुई है। उसकी रचना जब उन्नत मस्तिष्कवाले आचार्योंके हाथोंसे छूटकर अनधिकारियोंके हाथोंमें आपड़ी, तब उन्होंने अपनी योग्यताके अनुसार उसे धीरे धीरे वह रूप दे डाला जिसका प्रभाव वर्तमान जैनसमाजमें दिखलाई देता है। हमारा पिछला साहित्य ऐसा दुर्बल और असार है कि उसका अध्ययन करके कोई जाति जीवनी शक्ति प्राप्त नहीं कर सकती है और दुर्भाग्यकी बात यह है कि इस समय इसी पिछले साहित्यका ही अधिक प्रचार है। इस विषयमें बहुत कुछ लिखनेकी इच्छा है; परन्तु समय तथा स्थानके अभावसे यहाँ इतना ही कह कर सन्तोष करना पड़ता है कि मूल जैनधर्म या उसकी अहिंसा दुर्बलता और कायरता और सिखलानेवाली नहीं है; उससे उच्चश्रेणीका जीवन व्यतीत करनेकी शिक्षा मिलती है।

जैनधर्मका स्वरूप समझनेके लिए जैनधर्मके प्राचीन साहित्यके अध्ययन करनेकी आवश्यकता है और वह अध्ययन भी उन पाश्चात्य लोगोंके

समान ऊपरा—ऊपरी न होना चाहिए जिन्होंने कि एकबार जैनधर्मको बौद्धधर्मकी शाखा करार दिया था। जैनधर्मका गहरा अध्ययन बतलायागा कि इस धर्मकी शिक्षामें वे सब शिक्षायें मौजूद हैं जिनकी एक राष्ट्रके संगठनमें आवश्यकता होती है। लालाजीने भी यदि ऐसा किया होता तो उन्हें जैनधर्मके छोड़नेकी आवश्यकता न पड़ती; पर जैनसमाजमें रहकर वे आर्यसमाजके समान स्वतंत्रतापूर्वक देशका कल्याण कर सकते या नहीं, इसमें हमें सन्देह है। क्योंकि वर्तमान जैनसमाजका विचारवातावरण आर्यसमाजकी अपेक्षा बहुत संकुचित है—उसमें उदारताकी बहुत कमी है।

२ दो जातियोंमें विवाहसम्बन्ध।

अहमदाबादके श्रीयुत सेठ चिमनभाई नगीन-दासकी कन्याका विवाह—जो कि दशा श्रीमाली हैं—सेठ मनसुखभाई भगूभाईके भानजे भचूभाईके साथ—जो कि ओसवाल हैं—महाबलेश्वरमें नई पद्धतिके साथ अभी थोड़े ही समय पहले हुआ है। दोनों ही कुटुम्ब धनी मानी और अपनी अपनी जातिके मुखिया हैं और दोनों ही जैनधर्मके अनुयायी हैं। इसी प्रकारका एक विवाह गतवर्ष भी हुआ था और वह भी दो प्रतिष्ठित कुटुम्बोंके बीच हुआ था। उसमें राजकोटके एक मुखिया लड़कीके पिता थे और बड़ोदाके दूसरे महाशय वरके पिता। ये दो उदाहरण ऐसे हैं जिससे मालूम पड़ता है कि अब जैनसमाजमें भी समाजसुधारके विचारोंने प्रवेश किया है—और उनकी पहुँच समाजके धनी मुखियाओं तक होने लगी है। वे भी अब समझने लगे हैं कि हमारे यहाँ जो सैकड़ों जातियाँ और उपजातियाँ हैं उन सबको बनाये रखना अपना सर्वनाश कर लेनेके बराबर है। इन सैकड़ों भेदभा-

वोंको रखकर दिनपर दिन दुर्बल और क्षीण होने-वाला जैनसमाज जीता नहीं रह सकता। यह समय प्रत्येक जातिके मुखियाओंके चेतनेका है। उन्हें चाहिए कि वे इस प्रश्न पर खूब गंभीरतासे विचार करें और भविष्यमें वे क्या करेंगे इसका निश्चय अभीसे कर रखें। समझदार वह है जो अपनी आवश्यकताओंको समझकर उनके लिए पहलेहीसे तैयार हो रहता है। अन्यथा आवश्यकतायें तो उनसे जो चाहती हैं वह करा ही लेती हैं। नये विचारोंका और नई आवश्यकताओंका जो स्रोत खुला है उसके प्रवाहमें पड़े बिना और बहे बिना कोई समाज और जाति नहीं रह सकती। जो जातियाँ बुद्धिमती हैं वे उस प्रवाहके साथ बहनेके लिए पहलेहीसे तैयार हो रहती हैं और सबके साथ कुशलतापूर्वक अभीप्सित स्थलपर पहुँच जाती हैं; पर जो ऐसा नहीं करती हैं, उन्हें प्रवाहकी प्रबल टक्करोंसे छिन्न भिन्न होकर जीर्णशीर्ण होकर बड़ी कठिनाईसे वहाँतक पहुँचना पड़ता है अथवा बीचमें ही नष्टप्रष्ट हो जाना पड़ता है।

३ एक जैन जातिका विवाह-सम्बन्धी कष्ट।

हमारे पाठक 'समैया' नामकी जैनजातिसे परिचित होंगे। परिवार जातिका यह एक भेद है। धर्मभेदके कारण इनमें जातिभेद हो गया है। ये तारनस्वामीके अनुयायी हैं और मूर्तिपूजाको नहीं मानते हैं, केवल जैनशास्त्रोंकी पूजा करते हैं। पहले परिवारोंके साथ इनका विवाहसम्बन्ध होता था। अब भी कहीं कहीं होता है।

हमारे पास इस जातिके एक सज्जनकी चिठी आई है जिसकी ओर हम अपने समाजका ध्यान आकर्षित करते हैं। वे लिखते हैं—“हमारी विराद्रीमें कुँआरे लड़के बहुत हैं। लड़कियाँ भी

कुँआरी हैं। कई लड़के ऐसे हैं जिनका एक एक विवाह हो चुका है, पर स्त्रियाँ गुजर चुकी हैं। लड़कियाँ कुँआरी हैं लेकिन उनकी साँके नहीं चुकती हैं। हम लोगोंकी विराद्री बहुत कम हो गई है। त्रिनैकावार (दस्सा) बहुत बढ़ गये हैं। यहाँ कोई ऐसे आदमी नहीं हैं, जो कुँआरे लड़के लड़कियोंकी—जहाँ जहाँ हमारी विराद्री है वहाँ वहाँ खोज करके सगाई करा दें या कोई और तदवीर बतावें। कुँआरे लड़कोंका किसी तरह विवाह हो जाय, कोई विचार किया जाय तो ठीक, जिससे वे बिगड़ने न पावें। कई लड़कोंकी शादियाँ दो दो तीन तीन हो गई हैं और उनकी स्त्रियाँ गुजर गई हैं। इससे एक तो जातिमें लड़कियोंकी कमी हो गई है और जो हैं उनकी साँक नहीं सुलझती। यदि किसी तरह साँके सुलझ गई तो वर्ग प्रीति नहीं मिलती है। यदि इस विषयमें हम लोगोंसे कहते हैं तो उत्तर मिलता है कि जहाँ साँक मिले वहाँ मिलाओ और देश देश भटको। इत्यादि।” यह चिठी हम उक्त सज्जनकी इच्छाके विरुद्ध प्रकाशित करते हैं, पर जिस कारण उन्होंने हमें ऐसा करनेसे रोका है, वह उनका नाम प्रकाशित होना है, और उसे हम प्रकाशित नहीं करते। समैया भाइयोंकी दुर्दशाका ज्ञान हमें बहुत समयसे है। इनकी संख्या बहुत थोड़ी रह गई है और इस कारण इनकी सामाजिक अवस्था बहुत शोचनीय है। ये चाहते हैं कि हम अपने परिवार भाइयोंसे मिल जायँ और इसके लिए कोई कोई तो अपना सम्प्रदाय छोड़ देनेके लिए भी राजी हैं। परन्तु अपनेको परम श्रेष्ठ समझनेवाले परिवार भाई इस ओर जरा भी ध्यान नहीं देते। जैनसमाजकी संख्यान्हासके प्रश्नपर विचार करते हुए समाजके कई सज्जनों-ने लिखा था कि “जैनतरोको जैन बनानेसे जैन-

समाजकी वृद्धि होगी न कि अन्तर्जातियोंके-
 पारस्परिक विवाह प्रचलित करनेसे या पुनर्विवा-
 हसे।” पर हम देखते हैं कि दूसरे लोगोंको
 जैन बनाना तो बड़ी बात है, किसीसे यह भी
 तो नहीं बनता है कि अपने इन थोड़ेसे समैया
 भाइयोंको ही अपनेमें मिला लिया जाय। किसी-
 को अपने धर्ममें मिलाना क्या कोई दिलगी
 है? इसके लिए बड़ा औदार्य चाहिए। जिनमें
 इतनी भी उदारता नहीं है कि अपने जाति-
 भाइयोंको ही अपनेमें मिला लें, चौंके चूल्हे और
 सखरे-निखरेके झगड़ोंसे ही जो नहीं सुलझ पाते
 हैं वे बेचारे दूसरोंको क्या जैन बनायेंगे? हमारी सम-
 क्षमें परवार जातिकी प्रत्येक पंचायतीमें इस विष-
 यकी चर्चा होनी चाहिए और समैया भाइयोंके साथ
 बेटिव्यवहार जारी करनेके लिए कोशिश करना
 चाहिए। हम इस बातको अच्छा नहीं समझते
 हैं कि किसी सामाजिक सुभीतेके लिए कोई
 अपने धर्मको या विश्वासको बदल दे और इसके
 लिए किसीको लाचार करनेका भी हमारी सम-
 क्षमें किसीको कोई अधिकार नहीं है; तो भी
 हम देखते हैं कि तारनपंथ एक ऐसा पन्थ है
 कि जिसमें जीवनी शक्तिका प्रायः अभाव है।
 उसका समझनेमें आने योग्य कोई स्वतंत्र साहित्य
 नहीं है और इस कारण उसका जीवित रहना
 असंभव है। उसके माननेवाले और श्रद्धा रख-
 नेवाले तभीतक रह सकते हैं जब तक उनमें
 शिक्षाका प्रचार नहीं हुआ है। ज्यों ही वे
 शिक्षित होंगे त्यों ही किसी दूसरे मार्गको
 पकड़ लेंगे। ऐसी अवस्थामें यह अच्छा है कि
 वे मूर्तिपूजक बना लिये जायँ जिससे उनमें
 किसी तरह जैनत्व तो बना रहे। परन्तु फिर
 भी हम यह कहेंगे कि वे इसके लिए लाचार न
 किये जायँ। उन्हें समझाया जाय, उपदेश
 दिया जाय और यदि वे अपना विश्वास बदल-

नेके लिए तैयार हों, तो आदरपूर्वक उन्हें अपने
 सम्प्रदायमें मिला लिया जाय। उन्हें ही क्यों
 तारनपन्थकी माननेवाली जो असाठी आदि
 और कई जातियाँ हैं उन्हें भी इसी तरह उप-
 देशादि देकर अपने सम्प्रदायमें मिला लेना
 चाहिए। एक दो अच्छे विद्वान् उपदेशक यदि
 वर्ष दो वर्ष ही इस विषयमें प्रयत्न करें तो
 अच्छी सफलता होगी। यदि समैया भाई अपने
 विश्वासको बदलनेके लिए तैयार न हों,
 वे अपने ही पन्थमें आरूढ़ रहनेमें प्रसन्न
 हों, तो भी उनके साथ सामाजिक सम्बन्ध
 जोड़नेमें कोई हानि नहीं है। जब वैष्णव
 अग्रवालों और जैन अग्रवालोंमें परस्पर सम्बन्ध हो
 सकता है—जैन और वैष्णव जैसे विरुद्ध धर्म भी एक
 घरमें अच्छी तरह रह सकते हैं, तब कोई कारण
 नहीं कि तारनपंथी और दिगम्बर जैनी आपसमें
 विवाहसम्बन्ध न कर सकें। तारनपंथ दिगम्बर
 सम्प्रदायका ही एक भेद है जो मूर्तिपूजाको
 नहीं मानता है और दिगम्बर संप्रदायकी प्रायः
 सभी बातोंको मानता है—यहाँतक कि दिगम्बर
 सम्प्रदायके पद्मपुराण, हरिवंशपुराण आदि
 ग्रन्थोंका स्वाध्यायादि भी करता है। कहीं
 कहीं समैया भाइयोंका परिवारोंके साथ भोजन-
 पानका भी सम्बन्ध है और कभी कभी तो अप-
 वारूपसे एक दो विवाहसम्बन्ध भी हो जाते
 हैं। ऐसी दशामें उनके इस निकट सम्बन्धको
 और भी अधिक निकट बनाना सर्वथा उचित है
 और प्रयत्न करनेसे इसमें सफलता भी हो
 सकती है। यदि इस विषयकी ओर दुर्लक्ष्य
 किया जायगा, तो इसका परिणाम अच्छा न
 होगा। जैनसमाजकी घटती हुई संख्या और
 भी तेजीसे घटेगी।

४ ढाई वर्षकी कन्या और नौ वर्षका वर ।

‘प्रगति आणि जिनविजय’के एक नोटसे और काटोलके श्रीयुत गुजावा रावजी पलसापुरके एक पत्रसे मालूम हुआ कि पण्डित राममाऊ नामके सज्जनने शोलापुरमें एक सेतवाल कन्याका विवाह—जिसकी उम्र ढाई वर्षकी है एक नौ वर्षके लड़केके साथ कराया है । पं० रामभाऊजी सेतवाल भाइयोंके गुरु हैं । वे भट्टारक नहीं हैं; पर भट्टारकोंके ही समान हैं और एक छोटेसे भट्टारक उनके हाथमेंके कठ पुतले हैं । आप सेतवाल भाइयोंमें विशेषकरके भोले भोले ग्रामीणोंमें खूब ही पुजते हैं और उनसे अपनी इच्छानुसार धर्मके स्वाँग रचाया करते हैं । मनुष्यगणनाकी रिपोर्टमें जो पाँच वर्षके भीतरकी ९२ जैन-विधवायें बतलाई गई हैं वे आप ही जैसे महात्माओंकी कृपाकी आभारिणी हैं । इसे हम बड़ा भारी सौभाग्य समझते हैं जो उक्त कन्या सेतवाल जातिकी है जिसमें विधवाविवाह जायज है, नहीं तो यदि दुर्भाग्यसे उस छोटेसे बालकका जीवनदीपक बुझगया—यद्यपि हम ऐसा न होनेके लिए हृदयसे चाहते हैं—तो इस दुधमुँही बच्चीके लिए जो विवाहका तत्त्व तो क्या समझेगी, अच्छी तरह शब्दोच्चारण भी नहीं कर सकती है धर्मके मर्मज्ञों द्वारा यह व्यवस्था दी जाती कि इसे जीवन भर वैधव्यव्रतका पालन करना चाहिए । क्योंकि इसका दान किया जा चुका है और विवाह—मंत्रोंकी प्रतिज्ञा द्वारा यह बद्ध हो चुकी है । अर्थात् पं० रामभाऊ और अज्ञान मा—बापके पापका प्रायश्चित्त निर्दोष बालिकाको जीवन भर रँडापा काटके करना चाहिए । मर्मज्ञोंकी यह समझ बड़ी अनौखी है कि इधर तो वे बलात् वैधव्य पालन करनेके लिए

कमर कसंगे और उधर बाल्यविवाह तथा वृद्ध-विवाहके रोकनेके लिए भी कोई प्रयत्न न करेंगे; बल्कि यदि बन सका तो पं० रामभाऊजीके समान इन कामोंमें सहायता अवश्य दे निकलेंगे ।

५ बालहत्या ।

ता० ९ जुलाईके कान्फरेंस—प्रकाशमें उसके सम्पादक महाशय लिखते हैं—“ गत रविवारको अजमेरके होलीदंडा नामक नुहल्लेमें किसी विधवाने गन्दे पानीके एक टीनमें तत्कालके जन्मे हुए एक बालकको डाल दिया था, इस लिए कि उसका पाप किसी पर प्रकट न हो जाय; परन्तु जब भंगिन टीन साफ करनेके लिए आई और बच्चेको देखा तब उसने शोर मचाकर सब पर प्रकट कर दिया । हमने भी मौके पर जाकर यह सब देखा । इससे हमें बहुत ही दुःख हुआ । ऐसे दृश्योंका चित्र सर्व साधारणके सामने उपस्थित किया जाना चाहिए, इस खयालसे हमने फोटो भी उसी समय लोलीया जो हमारे खास अंकमें प्रकाशित होगा । इसी प्रकार एक घटना २-३ दिन पहले लाखनकोठड़ीमें भी हुई थी । ...” चन्द्रबा नामकी एक और हिन्दू विधवाने जातिभयके कारण अपने तत्काल प्रसव किये हुए पुत्रकी हत्या कर डाली, पर पकड़ी गई और बम्बई—हाईकोर्टने उसे कालेपानीकी सजा दी । यह सजा एक जीवदयाप्रचारक सज्जनकी प्रार्थनासे गवर्नर साहबने घटा दी और अब उसे दो वर्षकी कड़ी कैद भोगनी होगी । इस तरहकी हत्यायें और गर्भपात तब तक कम नहीं हो सकते जब तक स्त्रियों बलपूर्वक ‘वैधव्य’ भोगनेके लिए लाचार की जाती हैं । विधवाओंका अपने मृतपतियोंके चरणोंका ध्यान रखते हुए अपनी इच्छानुसार वैधव्यव्रतका जीवन भर पालन करना जितना अच्छा और अनुकरणीय कार्य

है, और ऐसी विधवायें जिस समाजमें हैं वह समाज जितना श्रेष्ठ और सभ्य है, विधवाओंको बलपूर्वक वैधव्य पालन करनेके लिए लाचार करना और उन्हें गुप्त रूपसे पाप करनेके लिए प्रस्तुत करना उतना ही निन्द्य और तिरस्करणीय कार्य है और जिस समाजमें यह होता है वह उतना ही नीच और असभ्य है ।

६ एक मुनि और एक विधवा ।

कल्याणजी नामके एक स्थानकवासी जैन मुनिने एक १७ वर्षकी विधवा श्राविका पर कृपा की और जब उसका फल एक पुत्रके रूपमें फला, तब अपने सास-ससुरके निकाल देनेपर बेचारी उसे लेकर उपाश्रयमें पहुँची । वहाँ रो-बिलखकर उसने अपनी पापकहानी सुनाई और मुनि महाराजके लिखे हुए वे पत्र पेश किये जिसमें उसे इस विषयमें चिन्ता न करनेका और भरण पोषणका प्रबन्ध कर देनेका आश्वासन दिया था । पर श्रावकोंको अपने धर्मकी और साधुसम्प्रदायकी निन्दाके डरने सताया और उन्होंने इस मामलेको दबानेकी कोशिश की । कहते हैं कि कुछ साधु भक्तोंने बेचारी अबलासे वे चिट्ठियाँ छीनकर फाड़-फूड़ डालीं और उसे धमकाया जिससे वह मुनि महाराजके पाप पर परदा डाल दे । यह सब कुछ हुआ पर देखते हैं कि अब यह मामला दबता नहीं है । कुछ निष्पक्ष लोगोंकी आँख पर चढ़ जानेसे दूधका दूध और पानीका पानी हुए बिना यह रहनेवाला नहीं है । जो हों, यह घटना हमें सचेत करती है कि भाईयो ! धर्मके नामसे ही मत भूल जाओ । जो धर्मात्मा कहलाते हैं, जिन्होंने धर्मके आवरणसे अपनी असलियतको छुपा रक्खा है, उनसे सावधान रहो । साधु, यति, मुनि, क्षुल्लक, ब्रह्मचारी आदिके पवित्र नामोंको कलङ्कित करनेवाले भी इनमें बहुत होते हैं । इन नामोंके धारण

करनेका अधिकार महान् आत्माओंको ही था; पर अब चाहे जो 'नारि मुई घर संपति नासी, मूँड़ मुड़ाय भये सन्यासी' की उक्तिको चरितार्थ करता है । और बेचारी विधवाके विषयमें तो क्या कहा जाय ? वह बलात् वैधव्य भोग रही थी, अज्ञान थी, वासनाओंकी प्रबलताके मध्याह्न-मेंसे गुजर रही थी और एक वासनाओंके दास साधुसे एकान्तमें मिलने जुलने पाती थी । ऐसी अवस्थामें उसका जितना अपराध है उसकी अपेक्षा उस समाजका अधिक अपराध है जिसमें उस सरीखी अबलायें इस प्रकार पातित होनेके लिए लाचार होती हैं ।

७ झालरापाटनमें सरस्वतीभवन ।

श्रीमान् ऐलक पन्नाठालजीके प्रयत्नसे झालरापाटण शहरमें गत श्रुत पंचमीको एक सरस्वती भवनकी स्थापना हो चुकी है । इसके लिए ऐलकजीने संस्कृत प्राकृत और भाषाके लगभग २००० ग्रन्थ एकत्र कर लिये हैं और कई हजारका चन्दा कर लिया है । भवनके लिए एक मकान भी बन रहा है । इसके मंत्री श्रीयुत प्यारचन्दजी टोंग्या बड़ी बड़ी आशायें दिलाते हैं । भवनमें नये नये अलभ्य ग्रन्थ मँगाकर रक्खे जायँगे, बाहरवालोंको ग्रन्थ लिखाकर भेजे जायँगे, जो लोग चाहेंगे उन्हें वैसे भी ग्रन्थ दिखे जायँगे, मुद्रा, ताम्रलेख, शिलालेख आदि भी संग्रह किये जायँगे । इत्यादि । हम भी यही चाहते हैं कि सरस्वतीभवन एक आदर्श पुस्तकालयके रूपमें चले और वह आरेके सरस्वतीभवनकी तरह उसके संचालकोंकी कीर्ति बढ़ानेके ही लिए नहीं किन्तु सर्वसाधारणको वास्तविक लाभ पहुँचानेके लिए हो । अच्छा हो यदि मंत्री महाशय उपस्थित ग्रन्थोंकी एक सूची बनाकर प्रकाशित कर दें और ग्रन्थ लिखाने आदिका भी प्रबन्ध शीघ्र कर दें । जैनसमाजमें एक अच्छे सरस्वती-

भवनकी बहुत बड़ी आवश्यकता है । यदि ऐलकजी महाराज इस महान् कार्यको कर डालें तो उनका नाम जुगजुगके लिए अमर हो जाय ।

८ भारतमें शिल्पकी आवश्यकता ।

भारतमें शिल्पके नए कारखाने खोलनेकी भारी जरूरत है । हम इस बारेमें भारतका जापानसे मुकाबला करते हैं । जापानमें साधारण आदमियोंने जो ४० वर्ष पहले भारतनिवासियोंसे न ज्यादा हुनरवर और न बुद्धिमान थे, शिल्पके बहुतसे काम जारी किये और बीस सालमें ही उन्नत हो गये । अब योरपकी तमाम चीजें अपने देशमें तैयार करते हैं । हिन्दके लोग भी तब तक सुखी न होंगे जब तक वह शिल्पके क्षेत्रमें आगे न बढ़ेंगे और इस बातको अच्छी तरहसे अनुभव न करेंगे कि हिन्दुस्तानमें हर प्रकारके कारखाने खोले जायँ और उनको तरक्की दी जाय । तब भारत अपनी प्राचीन उन्नतिको प्राप्त करेगा । आज कल हमारे इस्तेमालकी हर एक वस्तु विदेशसे मँगवाई जाती है । आज तक जिस कदर कारखाने खोले गये हैं उनमेंसे बहुत तो विदेशके रुपयेसे खोले गये हैं । इस प्रकारके कारखानोंसे भारतको कोई लाभ नहीं पहुँचता; क्योंकि विदेशके रुपयोंसे कारखाने चलानेमें सब लाभ देशके बाहर चला जाता है । जरूरत इस बातकी है कि हिन्दुस्तानका अपना रुपया कारखानोंकी तरक्कीमें लगे । भारतमें निस्सन्देह धन मौजूद है परन्तु वह लाभदायक कामोंमें नहीं लगाया जाता । यदि यह रुपया शिल्प कारखानोंमें लगाया जाय, तो इन कारखानोंकी बहुत तरक्की होगी और साथ ही देशका धन भी बढ़ेगा, और अवस्था भी सुधर जायगी । यदि हमारे राजे महाराजे और जागीरदार और धनाढ्य अपने रुपयोंको व्यर्थ खर्चाने या स्त्रियोंके भूषण बनानेकी पुरानी

आदतको छोड़कर इसे मुफ्तीद कामोंमें लगानेकी आदत बनानेका प्रयत्न करें तो वे अपने देशकी भारी सेवा करेंगे । तब दुर्भिक्षका भी प्रबन्ध हो जायगा । भारतमें सम्भवतः कोई फिकर ऐसा नहीं है, जिसने भारतकी तरक्कीके लिए इस कदर यत्न किया हो जितना पारसियोंने किया है । इन्होंने अपनी पूँजीको कारखानों और तिजारतमें लगा रक्खा है । पारसियोंकी संख्या सारे भारतमें केवल दो लाख है । तो भी यह अत्युक्ति नहीं कि उन्होंने हिन्दुस्थानमें कारखाने खोलनेकी तमाम दूसरे फिकरोंकी निस्वत ज्यादा कोशिश की है । न उनमें कोई साधु है और न कोई भिक्षा पर गुजारा करता है और न उनकी स्त्रियोंमें कोई वेश्या है । हालाँ कि अन्य तमाम फिकरों और जातियोंकी वेश्यायें भारतमें मौजूद हैं । क्योंकि इस गरीबीके कारण कई ऊँची जातोंकी स्त्रियाँ वेश्या बन गई हैं । इन सब खराबियोंका इलाज यह है कि देशमें हर प्रकारके कारखाने हिन्दुस्तानी पूँजीसे जारी किये जायँ और उनकी तरक्कीके लिए भारतीयोंको दृढ़ निश्चय कर लेना चाहिए और अपने देशकी बनी हुए चीजें इस्तेमाल करना चाहिए ।

—टहलराम गङ्गाराम ।

९ भूषण पहनानेकी कुरीति ।

हमारे पाठकोंसे यह अविदित न होगा कि भूषण पहनानेके कारण अनेक कोमल-हृदय बच्चोंको समयसे पहले ही कालका घास होना पड़ता है जिसका प्रमाण हमें पुलिसकी रिपोर्टोंसे भली भाँति मिलता है । अतः हमारे उन भारतीय नेताओंको भी शीघ्र इस प्रश्नकी ओर अपना ध्यान आकर्षित करना चाहिए, जो समय समय पर भारतकी दरिद्रताका राग अलापा करते हैं; क्योंकि हमारे देशवासियोंका

बहुतसा धन जेवर घड़वानेके कारण नष्ट होता है। धनी मानी राजा महाराजा और जमींदार इत्यादिके उस धनकी गणना की जाय जो वे जेवर बनवाने पर लगाते हैं तो उसकी संख्यासे हमें चकित होना पड़ता है। देशमें लाखों सुनार इसी काममें लगे हुए हैं जिससे कोई लाभ नहीं है। यदि यही रुपया इस निरर्थक काम पर न लगाया जाकर किसी उपयोगी कार्य पर लगाया जाय तो देशको भारी लाभ पहुँच सकता है। इस रुपयेसे कला कौशलकी शिक्षा और अछूत जातियोंका सुधार भी अनायास हो सकता है और इससे वह लाभ हो सकता है जिसके लाभका कोई ठिकाना नहीं। खेद है कि सोशियल काम्फ्रेस जो अनेक कुरीति सम्बन्धी प्रश्नोंपर विचार किया करती है उसने भी आज तक इस प्रश्नको अपने हाथमें नहीं लिया। सौभाग्यसे अब जनताका ध्यान इस ओर आकर्षित हो गया है, अतः सब कामोंको छोड़कर हमें प्रथम बच्चोंको जेवर नहीं पहनानेके आन्दोलनमें भाग लेना चाहिए। आशा है कि मेरे भाई भविष्यतकी भारतीय सन्तानको कालके मुखसे बचानेमें कोई कसर नहीं छोड़ेंगे। मैंने इस विषय पर एक ट्रैक्ट भी लिखा है, जिसमें बताया है कि हरसाल कितना रुपया भूषण बनवानेके कार्य पर व्यय हो जाता है। उसीमें साधुओंकी वर्तमान दशा पर भी प्रकाश डाला गया है। दो पैसेका टिकट भेजने पर निम्न लिखित पतेसे यह ट्रैक्ट प्राप्त हो सकेगा। “टहलराम गंगाराम जमींदार, डेरा इस्माईलखां (पंजाब)।”

१० एक दानद्रव्यका उपयोग।

नाँदगाँवनिवासी सेंट हीरालालजीकी पत्नी अपनी मृत्युके समय अपनी तमाम सम्पत्ति—जो

लगभग ३०-३५ हजार रुपये की है—दान कर गई हैं और इसके लिए ९ सज्जनोंको पंच नियत कर गई हैं। इसमेंसे ५ हजार परिवार जातिके हितार्थ, १ हजार नाँदगाँवके मन्दिरको, १ हजार चाँदवड़के मन्दिरको और १ हजार तीर्थक्षेत्रोंको; इस तरह आठ हजार रुपये देनेके लिए तो वे स्वयं बतला गई हैं और शेष २५-३० हजार रुपयोंके लिए लिख गई हैं कि वे किसी योग्य पाठशालाको दे दिये जायँ। अब प्रश्न यह है कि पंच महाशय ‘योग्य पाठशाला’ किसको समझें और किसको उक्त सम्पत्ति दी जाय। यद्यपि इसका विचार करना पंचोंके ही आधीन है—उन्हींको यह अधिकार है, तो भी समाचार-पत्रोंमें इसकी चर्चा उठी है और लोग इस विषयमें अपनी अपनी सम्मतियाँ दे रहे हैं। जैनमित्रके एक लेखककी राय है कि यह सम्पत्ति मोरेनाके सिद्धान्तविद्यालयको देना चाहिए, दिगम्बर जैनकी राय है कि मोरेना, मथुरा काशी, हांस्तिनापुर ये चार संस्थायें मुख्य हैं, इसलिए इनमेंसे किसी एकको मिलना चाहिए। पर हमारी समझमें इस सम्पत्तिको उपयोगमें लानेका सबसे प्रथम अधिकार दक्षिण महाराष्ट्रकी किसी संस्थाको है। दक्षिण महाराष्ट्रका जैनसमाज अज्ञानके गहरे अन्धकारमें पड़ा हुआ है। धार्मिक ज्ञान तो दूर रहा, वहाँ मामूली लिखना—पढ़ना जाननेवाले लोगोंकी भी बहुत कमी है। निजामके राज्यमें शिक्षा—संस्थाओंकी बहुत ही विरलता है और उसीके उत्तर भागमें अधिकांश खंडेलवाल तथा दूसरे जैनी रहते हैं। हम स्वयं उस ओर देखकर आये हैं कि उनमें शिक्षाका प्रायः अभाव है। ऐसी दशामें आवश्यकता है कि सबसे पहले इस दान—द्रव्यसे उन्हींकी अज्ञानता दूर करनेका प्रयत्न किया जाय। या तो इसके लिए किसी सुभीतेके स्थानमें नई

पाठशाला खोल दी जाय, या गत वर्ष कचनेरमें जो विद्यालय स्थापित हुआ है और जिसमें सुनते हैं कि ६०-७० लड़के पढ़ने लगे हैं, उसीको यह सम्पत्ति दे दी जाय, अथवा इस सम्पत्तिसे उसमें पढ़नेवाले बाहरके विद्यार्थियोंको १५-२० वृत्तियाँ नियत कर दी जायँ। कुछ भी हो, इस सम्पत्तिका उपयोग दक्षिण महाराष्ट्रके लिए ही होना चाहिए। यहीं न्याय्य है और यही उचित है। इसके विरुद्ध जो कुछ किया जायगा, वह अन्याय्य और अनुचित होगा।

११ पर्युषण पर्व प्राचीन है या अर्वाचीन ?

मराठीका पुरानी मासिक पत्र 'जैनबोधक' अब शोलापुरसे निकलने लगा है। श्रीयुत सेठ जीवराज गोतमचन्द्र दोंसी उसके सम्पादक नियत हुए हैं। आपके द्वारा उसके दो अंक-निकल चुके हैं और दोनोंही ठीक समय पर निकले हैं। आशा है कि अब यह पत्र नियमित रूपसे चलेगा और मराठीमें जैन मासिकके अभावकी पूर्ति करता रहेगा। इसके दूसरे अंकमें पं० बंशीधरजी शास्त्रीका एक लेख प्रकाशित हुआ है जिससे पर्युषण या दशलक्षणपर्वके सम्बन्धमें एक नया प्रश्न उपस्थित हो गया है। शास्त्रीजीके लेखसे मालूम होता है कि पर्युषण या दशलक्षण पर्वका प्रचार उत्तर भारत, गुजरात, राजपूताना और मध्यप्रदेशमें ही है। दक्षिणमें यह केवल उन्हीं स्थानोंमें माना जाता है जहाँ गुजराती या मारवाड़ी लोगोंका संसर्ग है। कोल्हापुर, बेलगाँव, दक्षिण कानडा, मैसूर आदि प्रान्तोंमें इसका कोई नाम भी नहीं जानता है। दिगम्बर सम्प्रदायके प्राचीन शास्त्रोंमें भी कहीं इसका उल्लेख नहीं है। यत्र तत्र अष्टाह्निका पर्वका ही उल्लेख मिलता है। दक्षिण कर्नाटकमें अष्टाह्निकापर्व ही बड़े ठाठवाटसे मनाया जाता है। इससे बहुत

लोगोंका खयाल है कि यह पर्युषण पर्व बहुत प्राचीन नहीं है। श्वेताम्बर-सम्प्रदायमें इस पर्वका बहुत माहात्म्य है। आश्चर्य नहीं जो उसकी देखदेखी ही दिगम्बर सम्प्रदायमें इसका प्रचार हुआ हो। यह भी संभव है कि हमारी देखा-देखी श्वेताम्बर-सम्प्रदायने ही इसको ग्रहण कर लिया हो। श्वेताम्बर-सम्प्रदायमें यह भादों वदी १२ से प्रारंभ होकर सुदी ४ को समाप्त होता है और दिगम्बरमें उसके दूसरे ही दिन सुदी ५ से प्रारंभ होकर सुदी १४ को समाप्त होता है। इस पर शास्त्रीजीने एक विलक्षण ही अनुमान लड़ाया है। आप कहते हैं कि हिन्दुओं और जैनोंके प्रायः जितने महापर्व हैं वे सब शुक्लपक्षमें ही होते हैं। दिवाली, कृष्णाष्टमी आदि उन पर्वोंकी बात जुदी है जो किसी महापुरुषकी जन्म-मरण तिथिके कारण माने जाते हैं। इसके सिवाय जो पर्व जिस पक्षमें शुरू होता है वह उसी पक्षमें समाप्त हो जाता है; परन्तु श्वेताम्बर-सम्प्रदायका पर्युषण पर्व कृष्णपक्षमें प्रारंभ होता है और शुक्लपक्षमें समाप्त होता है। इससे कल्पना होती है कि यह पर्व जब उन्होंने दिगम्बरोंकी देखादेखी शुरू किया होगा, तब उपायान्तराभावसे उन्हें ऐसा करना पड़ा होगा। यदि वे दिगम्बरोंकी ही तिथियोंपर करते, तो वह अनुकरण कहलाता और इसमें दूसरी भी अनेक अड़चने आतीं, और यदि पीछे करते तो उधर पितृपक्ष शुरू हो जाता है जो साधारण जनताकी दृष्टिसे अशुभ माना जाता है। अतः दिगम्बरियोंके पहले ही उन्हें शुरू करना पड़ा। इस तरह शास्त्रीजीने इस पर्वके सम्बन्धमें बहुतसी बातें कहीं है, परन्तु निश्चित रूपसे उन्होंने कुछ भी नहीं कहा है। अर्थात् यह प्रश्न अभी खड़ा है कि पर्युषण पर्व प्राचीन है या अर्वाचीन, और वह पहले दिगम्बरोंमें प्रचलित

था या श्वेताम्बरोंमें। हम जैनसमाजके विद्वानोंका ध्यान इस ओर आकर्षित करते हैं कि वे इस उलझनको सुलझानेका प्रयत्न करें।

श्वेताम्बरसम्प्रदायके कल्पसूत्रमें—जो वीर निर्वाण संवत् ९८० में लिपिबद्ध हुआ है—पर्युषण पर्वका विस्तारसे उल्लेख है, इसलिए यह मानना पड़ेगा कि श्वेताम्बर सम्प्रदायमें पर्युषण पर्व नया नहीं है। अब रहे दिग्म्बरसम्प्रदायके प्राचीन शास्त्र, सो उनमें खोज करनेकी आवश्यकता है।

एक बात और है। दिग्म्बरसम्प्रदायमें यह दशलक्षणका पर्व माना जाता है—बुन्देलखण्ड आदि प्रान्तमें इसे कहते भी 'दशलक्षणपर्व' ही हैं—वहाँ पञ्जूसन शब्दको कोई जानता भी नहीं है—और दशलक्षण पर्व सालमें तीन बार होता है। अर्थात् भाद्रोंको छोड़कर यह माघ और चैतमें भी होता है; परन्तु माघ और चैत दोनोंहीके दशलक्षण ठाट-वाट और उत्सवसे नहीं होते हैं। इससे यह संभव जान पड़ता है कि श्वेताम्बरोंके पर्युषणके उत्सवका अनुकरण करनेके लिए उनके पड़ोसी दिग्म्बरोंने अपने दशलक्षणपर्वको यह विशाल रूप दे दिया हो। इस बातकी पुष्टि इस बातसे और भी विशेष होती है कि दक्षिण कर्नाटकमें जहाँ श्वेताम्बर—सम्प्रदायका पड़ोस नहीं है, दशलक्षण पर्व इतने ठाटवाटसे नहीं मनाया जाता है।

स्मरण रखना चाहिए कि यह एक ऐतिहासिक प्रश्न है। इससे किसी सम्प्रदायके महत्त्व या अमहत्त्वका कोई सम्बन्ध नहीं है। इसलिए इस पर बिलकुल तटस्थ होकर और साम्प्रदायिक मोह छोड़कर विचार करनेकी आवश्यकता है।

१२ माणिकचन्द-जैनग्रन्थमाला ।

उक्त ग्रन्थसालामें अब तक पाँच ग्रन्थ निकल चुके हैं—१ सागारधर्माभूतसटीक, २ लघीय-स्त्रयादिसंग्रह, ३ पार्श्वनाथचरित काव्य, ४

विक्रान्तकौरवीय नाटक और ५ मैथिलीकल्याण नाटक। अभी तक हमने इस ग्रन्थमालाके लिए स्थायी ग्राहक बनानेका कोई प्रयत्न नहीं किया था। क्योंकि हमें थोड़ा बहुत काम करके दिखानेके पहले सहायता माँगना या अपील करना पसन्द नहीं। हमारी नीति यह है कि पहले काम करके दिखलाना चाहिए; काम देखकर यह असंभव है कि सहायता देनेवाले न मिलें। तदनुसार हम उक्त ५ ग्रन्थ प्रकाशित करके दिखला चुके कि यह काम बराबर चलता रहेगा और यदि सहायता मिलती रहेगी तो इसके द्वारा सैकड़ों अलभ्य ग्रन्थोंका उद्धार हो जायगा। अब हम चाहते हैं कि इसके कुछ स्थायी ग्राहक बन जायँ, जिससे इसके फण्डमें घाटा न रहे और ग्रन्थोंका प्रचार भी खूब होता रहे। ये पाँच ग्रन्थ लगभग एक वर्षमें निकले हैं। ये सब लागतके मूल्यमें बेचे जाते हैं, इस कारण इन सबका मूल्य लगभग दो रुपया हुआ है। प्रतिवर्ष लगभग इतनेही मूल्यके ग्रन्थ निकलेंगे। यदि सिर्फ १०० ही ग्राहक या सहायक हमको ऐसे मिल जायँ जो इसके प्रत्येक ग्रन्थकी पाँच पाँच प्रतियाँ ले लिया करें और इस काममें उन्हें सिर्फ दश दश रुपया वार्षिक ही देना पड़ेगा, तो ग्रन्थमाला का कल्याण हो जाय। उसकी ५०० प्रतियाँ तैयार होते ही उठ जायँ और शेष धीरे धीरे बिकती रहें। दश रुपया देना धर्मात्मा भाईयोंके लिए कोई बड़ी बात नहीं। आशा है कि हमारी इस प्रार्थना पर पाठक ध्यान देंगे और जो महाशय इस प्रकार ग्राहक होना पसन्द करते हों वे हमें सूचना देनेकी कृपा करेंगे। स्वर्गवासी सेठ माणिकचन्दजीके स्मरणके लिए जिनके कि जैनसमाज पर असंख्य उपकार हैं और शास्त्रोद्धारका पुण्य सम्पादन करनेके लिए प्रत्येक धर्मप्रेमीको इस ओर अपना उदार हाथ बढ़ाना चाहिए।

शिक्षितोंकी उदारता ।

सम्पादक महाशय,

आप अकसर अशिक्षित धनियों तथा सेठों-पर कटाक्ष किया करते हैं और मौके-बेमौके उनकी हँसी उड़ाये बिना मानों आपको या आपके भाईबन्धुओंको चैन ही नहीं पड़ता है। शिक्षितों-विशेष करके अँगरेजीके पण्डितोंपर-आपकी कुछ अधिक कृपादृष्टि रहती है। परन्तु क्या आपने कभी अपने समाजके शिक्षितोंकी उदारतापर विचार किया है? यदि न किया हो, तो मेरे नीचे लिखे वक्तव्यपर दृष्टि डालनेकी कृपा कीजिए।

जैनसमाजमें अभीतक जितनी संस्थाओंकी स्थापना हुई है; क्या आप जानते हैं कि उनका संचालन किनकी उदारतासे हो रहा है? इनके चन्देकी सूचियाँ निकालकर देखिए, उनमें आपके प्यारे शिक्षितोंके नाम कितने हैं? विद्यादानका मार्ग खोलनेवाले सेठ माणिकचन्दजीने कौनसी उच्च श्रेणीकी शिक्षा पाई थी? हाईस्कूलके लिए कई लाख रुपये लगानेवाले सेठ कल्याणजीमलजी कौनसे कालेजमें पढ़े हैं? सेठ हुकुमचन्दजीने कौनसा विद्याध्ययन किया है? अभी मोरेनाकी पाठशालाको ३८ हजारका दान करनेवाले सेठ बालचन्द्र रामचन्दजी भी तो न संस्कृतके पण्डित हैं और न अँगरेजीके। आप कहेंगे कि हमारे समाजमें धनी लोग जितने हैं वे प्रायः अशिक्षित हैं, इसलिए वे ही दान कर सकते हैं। किसी अंशमें यह बात ठीक हो सकती है; परन्तु आपको यह भी स्मरण रखना चाहिए कि अँगरेजीकी उच्च शिक्षा पाये हुए आपके शिक्षितोंमें भी ऐसे लोगोंकी कमी नहीं है जिनकी आमदनी

इतनी अच्छी है कि यदि वे चाहें तो विद्यासंस्थाओंको खूब सहायता मिल सकती है। मैं ऐसे बीसों वकीलों, बैरिस्टों और दूसरे शिक्षितोंको जानता हूँ जिनकी आमदनी पाँच सौ से लेकर हजार रुपये मासिक तक है। यदि जैनसमाजके ये शिक्षित चाहें-अपनी आमदनीका दशवाँ हिस्सा ही दान करने लगे-तो केवल अपनी ही सहायतासे एक अच्छा कालेज चला सकते हैं; पर उनमें इतनी उदारता हो तब न ?

जो अशिक्षित हैं वे विद्यादानके महत्त्वको नहीं समझते हैं, समयको परखनेकी उनमें शक्ति नहीं, इस लिए यदि वे अपना रुपया मन्दिर-प्रतिष्ठाओंमें, अनार्थके भरणपोषणमें, अतिथि-सत्कार आदिमें लगाते हैं तो लगाने दो, पर शिक्षित तो सब कुछ समझते हैं। वे और सब कामोंसे घृणा करते हैं-सबको बाहियात समझते हैं तो समझें, पर अपना धन विद्याप्रचारमें तो लगावें। पर संसार देखता है कि वे नहीं लगाते हैं। लगा भी नहीं सकते। क्योंकि अँगरेजी शिक्षाका सबसे बड़ा विष जो ऐहिकता-विलासिता-है, वह उनकी नसनसमें व्याप्त हो गया है। उनके खर्च इतने बढ़ रहे हैं; जरूरतें इतनी बढ़ गई हैं, शारीरिक सुखसामग्रियोंमें उन्हें इतना खर्च करना पड़ता है कि दानके लिए उनके पास कुछ भी नहीं बच रहता। अशिक्षित लोग ज्योनारों, व्याहशादियों आदिमें जो खर्च करते हैं, उससे जाति विरादरीवालों तथा बन्धुबान्धुओंको फिर भी कुछ लाभ होता है; पर इनकी विलायती सामग्रियोंका तो एक पैसा भी देशमें नहीं रहने पाता है।

अशिक्षितोंकी अशिक्षितताकी जाहे जितनी निन्दा की जाय, पर उनकी उदारताकी तो प्रशंसा ही करना पड़ेगी। वे मेला प्रतिष्ठाओंमें, ज्योनारोंमें, अतिथि अभ्यागतोंमें, पूजा अर्चाओंमें, मन्दिरादि बनवानेमें जो लाखों करोड़ों रुपया खर्च

करते हैं, उसका भले ही सदुपयोग न होता हो, देशकालकी दृष्टिसे इन कामोंमें खर्च करना भले ही योग्य न हो, पर यह तो सोचिए कि उनके हृदयमें उदारता तो है, वे त्याग तो कर सकते हैं। केवल उदरभर तो नहीं होते। यह उनके त्याग गुणकी ही सूची है कि वे आपके विद्यादानको कुछ विशेष महत्त्वकी चीज नहीं समझते हैं तो भी आपके कहने सुननेसे उसमें हजारों रुपया दे डालते हैं। देशके प्रत्येक कार्यमें प्रत्येक आन्दोलनमें वे आर्थिक सहायता देते हैं और बतलाते हैं कि शिक्षासे उदारताका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है।

एक सौ रुपया महीना कमानेवाला साधारण अशिक्षित गृहस्थ जितना दान कर सकता है, आपके (१००) रु० मासिक पानेवाले बाबू उससे चौथाई दान भी नहीं कर सकते हैं।

गतवर्ष आपकी बम्बईमें ही इन शिक्षितोंका एक सम्मेलन हुआ था। बड़े बड़े वकील और बैरिस्टर उसमें उपस्थित हुए थे। भारतजैन-महामण्डलको स्वयं धनकी आवश्यकता रहती है, पर उसके लिए भी आपके शिक्षित सज्जनोंने कुछ भी सहायता न की। उसके बाद बम्बईमें श्वेताम्बर जैन कान्फरेंसका अधिवेशन बड़ी धूमधामसे हुआ। इसका प्रायः सभी काम काज शिक्षितोंके नेतृत्वमें हुआ था। एक दर्जनसे अधिक वकील बैरिस्टर और सालिसिटर उसमें शामिल थे। कान्फरेंसका चन्द्रा भी खोला गया जिसमें लगभग चार हजार रुपया एकत्र हुए; पर उसकी सूचीमें भी आपके शिक्षित भाइयोंके आँकड़े नदारद! इस तरहके और भी उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनसे आपके शिक्षित भाइयोंकी उदारताकी थाँह मिलती है।

क्या आप अपने शिक्षित बन्धुओंको हमारे अशिक्षित पुरुषोंकी उदारताका अनुकरण करनेके लिए समझायेंगे? —एक अशिक्षित।

व्यास और भीष्म ।

[बंगलामें स्वर्गीय बाबू द्विजेन्द्रलालरायका 'भीष्म' नामका सुप्रसिद्ध नाटक है। महाभारतके कथानकको लेकर इसकी रचना की गई है। बहुत ही अच्छा है। इसके दो दृश्योंमें व्यास और भीष्मका जो कथोपकथन है उसे हम अपने पाठकोंकी भेट करते हैं। पहलेमें त्याग धर्मकी महत्ता बतलाई गई है और दूसरेमें कर्तव्यकी।]

पहला दृश्य ।

[व्यासके आश्रमका उद्यान, प्रसातकाल, व्यास और भीष्म दोनों धीरे धीरे टहल रहे हैं।]

व्यास—धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम् (धर्मका तत्त्व गुहामें छुपा हुआ है।)

भीष्म—तब मैं उसकी खोज कहाँ करूँ ?

व्यास—अपने हृदयके भीतर।

भीष्म—उसे मैं पाऊँगा कैसे ?

व्यास—अपने हृदय-मन्दिरकी ओर कान लगाकर, सावधानतासे सुनो, वह अतिशय मधुर, गाढ़, गंभीर, स्थिर संगीत सुनाई पड़ेगा।

भीष्म—कहाँ ! कुछ भी तो नहीं सुन पड़ता प्रभो !

व्यास—देवव्रत ! अवश्य सुन पड़ेगा। तुम्हें मैंने दिव्यज्ञान दिया है। अच्छा अबकी बार सुनो, देखो वह हृदयवीणाके तारोंपर मधुर झङ्कार हो रही है। सुनो देवव्रत ! क्यों सुन पड़ी ?

भीष्म—हाँ, जैसे दूरस्थित समुद्रकी कल्लो-लकी आवाज सुनाई पड़ती है।

व्यास—उसका कुछ मर्म समझ पड़ा।

भीष्म—नहीं, कुछ नहीं।

व्यास—अच्छा तो फिर मन लगाकर सुनो।

भीष्म—सुनता हूँ।

व्यास—देवव्रत ! सुनो, उस महागीतमेंसे यह ध्वनि निकलती है कि “ पराये हितके लिए स्वार्थत्याग करना, यही सकल धर्मोंका मूल है। ”

भीष्म—क्या कहा ऋषिवर त्याग ?

व्यास—हाँ, त्याग । देवताके चरणोंपर हँसते हँसते अपने सुखका बलिदान कर देना, बस यही परम धर्म है और सनातन धर्म है । और सारे धर्म इसके सन्तान हैं ।

भीष्म—देवताके चरणोंमें अपने सुखका बलिदान ?

व्यास—हाँ, देवताके चरणोंमें अपने सुखका बलिदान कर देना यही महाधर्म है ।

भीष्म— देवता कौन ?

व्यास—मानव ।

भीष्म—लोग अपने सुखका बलिदान क्यों करें?

व्यास—परम सुखकी प्राप्तिके लिए ।

भीष्म—प्रभो ! वह सुख कौनसा है ?

व्यास—विवेककी जयध्वनि, आत्माका सन्तोष और मनुष्योंका आशीर्वाद । इन सुखोंको क्या तुम नहीं जानते ? त्यागमें जो शान्ति और सुख है वह और कहीं नहीं । उसके सामने स्वार्थसिद्धिका सुख उसी तरह फीका पड़ जाता है जिस तरह सूर्योदय होने पर चन्द्रमा । स्वार्थका बलिदान करनेमें ही मनुष्यका जय है और यही सभ्यताको आगे बढ़ानेवाला है । इस महान् उद्देश्यको सामने रखकर अपने कर्तव्यका पालन करनेमें बड़ा सुख है देवव्रत !

भीष्म—प्रभो ! मैं समझ रहा हूँ ।

व्यास—चित्तको स्थिर करके इस मंत्रका ज्यों ज्यों जप करोगे, त्यों त्यों तुम उस महा संगीतको, स्पष्ट, स्पष्टतर, स्पष्टतम रूपमें सुन सकोगे जिसमें कि सम्मिलित पृथिवीकी समस्त गीतध्वनियाँ एक साथ बज उठती हैं और जिस सामगानका प्रारंभ वेणुके मन्दस्वरसे होकर अन्त सिंगीके उच्छ्वासमें जाकर होता है । अच्छा तो देवव्रत ! मंत्रका जाप करो ।

भीष्म—जो आज्ञा ऋषिवर !

व्यास—सन्ध्या होनेको आई है । चलो, अब आश्रमके भीतर चलें । दोनों जाते हैं ।

द्वितीय अंक, पंचम दृश्य ।

व्यास—मनुष्य हमेशा सुखके लिए पागल बना रहता है और भोजन-पानमें, शयन-आसनमें, घोड़ा-गाड़ीमें, मान-सम्मानमें, मूल्यवान् वस्त्राभूषणोंमें और तरह तरहके व्यसनोमें उसीको ढूँढ़ा करता है । परन्तु वास्तवमें देखा जाय तो उसका पाना बहुत ही सहज, और सरल है । वह उसी तरह बिना परिश्रमके प्राप्त हो सकता है जिस तरह अपनी ही मुट्टीमें चीज ।

भीष्म—सो कैसे ?

व्यास—सुखकी विविध सामग्रियाँ यद्यपि हमारे हाथमें नहीं हैं; परन्तु हम अपनी आवश्यकता-ओंको तो कम कर सकते हैं । आमदनी भले ही न बढ़े, पर खर्चको तो घटा सकते हैं । उनका लाभ सुलभ नहीं है पर क्षति तो सहज है । हमारी इस निरीह पर्णकुटीरको देखो ! कुशाका आसन है, वृक्षके बलकलोंके वसन हैं, फलमूलोंका हम भोजन करते हैं, और झरनेके स्वच्छ जलका पान करते हैं । परन्तु बतलाओ हमारे यहाँ किस चीजकी कमी है ? मैं अपनी इस फूसकी झोपड़ीका सम्राट् हूँ ।

भीष्म—प्रभो ! आप सम्राट्से भी बड़े हैं । इस फूसकी झोपड़ीमें रह कर भी आप भारत-वर्षका शासन करते हैं और इसी लिए मैं वीर परशुरामका शिष्य और हस्तिनाका युवराज भीष्म आज आपके द्वारपर ज्ञानकी भिक्षा माँगनेके लिए आया हूँ ।

व्यास—देवव्रत ! क्या अभीतक तुम्हारी ज्ञानकी प्यास नहीं बुझी है ?

भीष्म—देव, ज्ञानकी प्यास क्या कभी बुझती है ?

व्यास—देवव्रत ! तुमने विषपान कर लिया है । शीघ्र ही उसका इलाज करो ।

भीष्म—इसका मतलब ?

व्यास—क्षत्रियका धर्म ज्ञान-विचार नहीं है; रणक्षेत्र ही क्षत्रियकी कर्मभूमि है । जाओ, विचार करना छोड़ दो और काममें हाथ लगाओ । विचारने और सोचनेके लिए हम लोग हैं । जाओ, घर लौट जाओ ।



परपदेश-कुशल ।

(ले०--सिंघई मोहनचन्द्र जैन)

(१)

था प्रभातका समय मनोहर, पवन सुरीली थी चलती ।
कंजकली अति ललित मुदित मन, रवि किरणोंसे थी खिलती ॥
जलदखण्ड आभा अनूपयुत, थे नभमण्डलमें छाये ।
विटपों पर थे विहगवृन्द, कलरव करते बहु मनभाये ॥

(२)

झरझर करती सुन्दर सरिता, तरल मन्दगतिसे बहती ।
लता-गुल्मयुत उसके तट पर, आँखें निश्चल हो रहती ॥
इसी मनोरम भूमिभाग पर, फिरती थी डोली डोली ।
प्रेम भरी गंभीर कंकड़ी, निज सुतसे बोली बोली ॥

(३)

सरलपंथगामकिये सब ही, जगजन गुणगण-गाते हैं ।
सरल चाल है सब सुखदायक, नीतिवान् बतलाते हैं ॥
इससे अब तुम समझ सोचकर, चलो चाल सीधी प्यारे ।
मिले बड़ाई तुम्हें सब कहीं, शीतल हों मेरे तारे ॥

(४)

माताके सुन वचन पुत्र, यों हँसकर बोला मृदुवानी ।
सादर है स्वीकार मिली जो, सीख मुझे जननी स्यानी ॥
लेकिन एक विनय है मेरी, यही एक मेरा कहना ।
सिखा दीजिए सरल चाल, चलके मुझको सीधा चलना ॥

(५)

सुन करके यह उत्तर सुतका, उसे न सूझा कोई उपाय ।
अपनी टेढ़ी चाल छोड़ वह, चल न सकी डगभर भी हाय !
पर-उपदेश-कुशल होते जो, स्वयं नहीं कुछ कर सकते ।
उनकी होती दशा यही है, लज्जित हो वे चुप रहते ॥

आप पढ़िए और इस पुण्यकार्यकी सफलताके लिए अपने प्रत्येक
जैनबन्धुको पढ़नेके लिए दीजिए ।

तीर्थोंके झगड़े मिटाइए ।

क्षमावनीके पवित्र पर्वमें

भगवानकी आज्ञाका पालन कीजिए ।

प्यारे भाइयो ! भगवानका नाम और भगवानकी आज्ञा, इन दो बातोंपर किसे प्रेम न होगा ? और फिर उस सर्वोत्कृष्ट पर्वके दिन—क्षमावणीके दिन—जिस दिन क्षुद्रसे क्षुद्र मनुष्य भी भगवानकी आज्ञा माथे पर चढ़ानेमें नहीं चूकता है । इस शुभ दिनमें ऐसा कौन बुद्धिमान् होगा जो भगवानकी आज्ञा सुनने, समझने और अमलमें लानेके लिए राजी न हो ?

जिन भगवान् एक समय हमारे आपके ही समान मनुष्य थे; परन्तु जब वे 'मेरे-तरे' का भेदभाव और समस्त प्राणियोंके साथका वैरभाव छोड़कर क्षमाके सागर बने, तब मनुष्य मिटकर भगवान् बन गये । वे अपने अनुयायियोंको भी इसी मार्ग पर चलनेका उपदेश दे गये हैं और इसी लिए शास्त्रकारोंने भगवानके उपदेशका अनुसरण करके यह आज्ञा दी है कि जैनधर्मके प्रत्येक अनुयायीको सबेरे और शामको प्रतिक्रमण करके वैर विरोधकी क्षमा माँगना चाहिए । जिससे प्रतिदिन न बन सके उसे हर सप्ताहमें, हर महीने, हर छह महीने, और वह भी न बन सके तो वर्ष भरमें एक बार तो अवश्य ही वैरविरोधकी क्षमा करना-कराना चाहिए । यदि यह 'देना' वर्ष भरमें एक बार भी न चुकाया जाय, तो धीरे धीरे चक्रवृद्धि व्याजके समान कर्ज बढ़ता ही चला जाय और मनुष्य पापके बोझसे इतना दब जाय कि उसके लिए सिर ऊँचा उठाना कठिन हो जाय । इसी लिए सांवत्सरिक प्रतिक्रमणकी योजना की गई है, इसी कारण हम सब लोग एक दूसरेके घर जाकर क्षमावणी करते-कराते हैं और अपने सम्बन्धियों तथा मित्र बन्धुओंको क्षमावणीके पत्र लिखते हैं ।

परन्तु इस समय अपना यह सांवत्सरिक प्रतिक्रमण करना तथा क्षमावणी करना-कराना अधिकांशरूपमें एक बाहरी दिखाव या दूसरोंको दिखानेकी चीज—बन गया है । हम प्रतिक्रमणका पाठ तो कर जाते हैं; परन्तु उस पाठमें चौरासी लाख जीवयोनिके साथ वैर विरोध छोड़नेका जो वचन है हमसे उसकी पालना नहीं होती है । अपने मित्रों और रिश्तेदारोंसे तो हम क्षमावणी करते-कराते हैं; परन्तु जिनके साथ हमारे लड़ाई झगड़े चल रहे हैं उनसे क्षमावनी करने-करानेका हमें सूझता ही नहीं है । ऐसी दशामें हम भगवानकी आज्ञा पालनेवाले कैसे कहला सकते हैं ? क्या इस तरह दिनोंदिन बैरविरोधसे बढ़ते हुए पापका

बोझा अधिक होते जानेसे हम अपना कल्याण कर सकेंगे ? एक ओर तो हम भगवानका नाम जपते हैं और दूसरी ओरसे उनकी मुख्य आज्ञाका भंग करते हैं । क्या सच्ची भक्ति इसीको कहते हैं ?

इतना ही नहीं किन्तु यदि हम अपने रागद्वेषहीन जिन भगवानके नामसे अर्थात् उनके धर्मके नामसे या पवित्र तीर्थक्षेत्रोंके नामसे आपसमें वैरविरोध करें और क्रोध, द्वेष, असत्य, एक दूसरेका बुरा चाहनेकी वृत्ति, आदि अनिष्ट तत्त्वोंको पुष्ट करें—स्वयं प्रशान्त भगवानके नामसे ऐसा करें—तो यह कितना बड़ा मूर्खतापूर्ण और आत्मघातक कार्य होगा, पवित्र क्षमावणीके दिन प्रत्येक भाईको इसका विचार करना चाहिए ।

तीर्थ तारनेके लिए हैं—डुबानेके लिए नहीं ।

भाइयो, मनुष्य अधोगतिको न जाने पावे, इसके लिए 'धर्म'की स्थापना हुई है । इसी प्रकार 'तीर्थ' भी मनुष्यको संसारसागरसे पार उतारनेके साधन हैं । विरुद्ध इसके जो क्रोध, झगड़े बखेड़े आदि कार्य हैं वे सब मनुष्यको डुबानेवाले हैं । तब फिर क्या तीर्थके लिए लड़ाई-झगड़ों और वैरविरोधोंका करना उचित हो सकता है ? धर्म—और खास करके पवित्र जैनधर्म—तो कहता है कि तुम अपने शत्रुओंको भी क्षमा कर दो, सिर काटनेवालेका भी भला चाहो । और 'तीर्थ' कहते हैं कि हमको माननेवाले सब लोगोंको चाहिए कि एकत्र होकर और एकताका बल संग्रह करके उस बलसे संसारको तारनेका पुल बनावें ।

परन्तु हम सब तो, एकताका जो थोड़ा बहुत बल बाकी रह गया है उसे भी तीर्थोंके लिए ही तोड़ देनेको तैयार हुए हैं और सारी दुनियामें सब मिलकर जो तेरह लाखसे भी कम जैनी रह गये हैं उनमें भी अनेकता बढ़ाकर, परस्पर लड़कर, निर्बल पड़ जानेका मार्ग ग्रहण कर रहे हैं । सज्जनो ! एकताके बलके बिना, इस प्रबल प्रतिस्पर्धा और जडवादके जमानेमें अपने पवित्र जैनधर्मको क्या आप लोग जीता जागता रख सकेंगे ? ऐक्यबलके बिना क्या हम औरोंको जैनधर्मकी ओर आकर्षित कर सकेंगे ? एकताके बलके बिना हम सब क्या किसी भी प्रकारकी सांसारिक या पारमार्थिक उन्नति कर सकेंगे ? हम जो

उन्नतिके बदले अवनति और उसके साथ पाप

प्रतिदिन बढ़ाते जा रहे हैं, उसका शान्तिपूर्वक विचार करनेके लिए यदि इस पवित्र दिनको भी तैयार न होंगे तो और कब होंगे ? जिस प्रकार व्यापारी अपने हानि लाभका हिसाब दिवालीको निकालता है, उसी प्रकार प्रत्येक सच्चे जैनको पाप-पुण्यका हिसाब संवत्सरीके दिन—क्षमावणीके दिन—अवश्य निकालना चाहिए ।

और भूतकालकी अपेक्षा इस समय हमें पापसे बहुत सचेत रहना चाहिए—पापसे हमें बहुत डरना चाहिए। एक तो इस समय हमारे पास अपने भाग्यशाली पूर्वजोंके समान दृढ संस्थान और प्रबल पुण्य नहीं है, जिससे हम अपने पापोंको सहजमें भस्म करनेका पराक्रम कर सकें। दूसरे आज कलका समय, रीति रिवाज, राज्य आदि सभी बातें इस प्रकारकी हैं कि जिनमें चलते फिरते पाप हो जाते हैं। तब ऐसे समयमें इतनी सावधानी तो अवश्य रखना चाहिए कि हमें पाप काटनेके साधनोंके (धर्म, देव, गुरु, तीर्थके) निमित्त तो पापमें न पड़ना पड़े, शान्ति पानेके स्थानोंको तो आगके स्थान न बनाना पड़े। शास्त्रकार पुकार पुकार करके कहते हैं कि, भाइयों ! दूसरे ठिकानोंमें लगे हुए पाप तो तीर्थस्थानोंमें धोये जा सकते हैं; परन्तु तीर्थस्थानोंमें लगाये हुए पाप वज्रलेपके समान मजबूत हो जाते हैं।

तीर्थोंकी मालिकी ।

तीर्थस्थानोंके वास्तविक मालिक भगवान् हैं, न कि श्वेताम्बर या दिगम्बर। ये दोनों तो भगवानके 'ट्रस्टी' हैं। भगवानका एक पुत्र मन्दिर बनवावे-और दूसरा पुत्र उसका मालिक बननेको तैयार हो, यह जिस प्रकार शोभाका काम नहीं है, उसी प्रकार पहला पुत्र अदालतकी शरण जाकर ले; यह भी शोभाका काम नहीं है। यदि कभी भाई भाई भूल कर बैठें, क्योंकि भूल सभीसे होती है, तो भी भाई-भाईके झगड़े भाई-चारेकी रीतिसे—समाधानी और सुलह शान्तिकी रीतिसे—क्या मिटाये नहीं जा सकते ? भगवानके पुत्रोंके बीचके झगड़ोंके लिए, जिन भगवान् पर लेशमात्र भी श्रद्धा नहीं रखनेवालोंके पास जाकर न्यायकी भीख माँगी जाय और न्याय करानेके लिए लाखों रुपया खर्च किये जायँ, इसका अर्थ क्या यह नहीं होता है कि ये दोनों भाई किसी समय हिल मिलकर रहना ही नहीं चाहते हैं और इनके सारे समाजमें एक भी ऐसा समझदार आदमी नहीं है जो झगड़ोंको मिटा सके ?

क्या हम आपको अपने अपने हक छोड़ देनेकी सलाह देते हैं ?

नहीं। हम सब प्रार्थना करनेवालोंमेंसे किसीकी भी यह इच्छा नहीं है कि श्वेताम्बरोंको या दिगम्बरोंको अपने किसी तीर्थका बाजिब हक छोड़ देना चाहिए। यह तो हम मानते हैं कि हकका निर्णय होना ही चाहिए और न्यायपूर्वक ही हक दिये जाना चाहिए; परन्तु हमारी सूचना यह है कि भगवान् महावीरके पवित्र नामकी प्रतिष्ठाके लिए और उनके धर्मके गौरवके लिए तथा मुट्ठीभर बाकी रही हुई जैन प्रजाके गौरव तथा ऐक्य बलकी आवश्यकताके लिए, हमें अदालतोंमें जाना छोड़कर, भारतवर्षके सबसे अधिक लोकप्रिय, बुद्धिशाली और प्रामाणिक अगुओं या लीडरोंमेंसे एक अथवा अधिक अगुओंको चुन लेना चाहिए और उनसे इन्साफ कराना चाहिए।

लाभालाभका विचार ।

कोर्ट या अदालतके द्वारा इन्साफ माँगनेमें और देशके नेताओंके द्वारा इन्साफ करानेमें क्या क्या हानि लाभ हैं, इस विषयमें हमें अपनी व्यापारी बुद्धिसे विचार करना चाहिए:—

१ यह तो सभी जानते हैं कि सरकारी न्यायपद्धति बेहद खर्चवाली और अत्यन्त विलम्बवाली है। एक कोर्टमें बहुत समयतक मुकद्दमा चलता है, उसमें हजारों रुपया वकील बैरिस्टरोंको देना पड़ते हैं और अन्तमें दूसरी कोर्टमें जाना पड़ता है। इसके बाद वहाँ भी हजारों लाखों रुपया फूँककर फिर उससे ऊँची कोर्टमें जाना पड़ता है। इस बेशुमार खर्चके सिवाय दोनों पक्षवालोंको अपना जो बहुमूल्य समय खोना पड़ता है उसकी तो कुछ गिनती ही नहीं है। दौड़ धूप करनी पड़ती है और झंझटोंमें फँसना पड़ता है उसका भी कुछ हिसाब नहीं। इसके बदले यदि हम देशके नेताओंके द्वारा इन्साफ करावें, तो न अधिक समय लगे और न खर्च ही हो।

२ कोर्टको कानूनकी दफाओंके माफिक ही चलना पड़ता है। यदि जजकी इच्छा भी हो कि मुझे इस प्रकारका फैसला करना चाहिए; तो भी कानूनकी दफाओंके आगे उसे मन मारकर रह जाना पड़ता है। कानूनकी बारीकियाँ सत्यको भी थोड़ी देरके लिए दबा दे सकती हैं, परन्तु यदि देशके किसी नेताके हाथमें यह न्यायका कार्य दिया जायगा तो वह 'बालकी खाल निकालनेवाली' कानूनकी बारीकियोंकी अपेक्षा सत्य घटनाओं पर अधिक ध्यान दे सकेगा। क्योंकि उसे कानूनकी बारीकियोंका बन्धन नहीं रहेगा—उसके लिए न्याय देनेमें सत्य और परमात्माका ही बन्धन रहेगा।

३ हमारे कई तीर्थ देशी राज्योंमें हैं और कई अँगरेजी सरहदमें। इन देशी और अँगरेजी राज्यके सभी न्यायदाता, हर मौके पर, अपने चरित्रबलको सम्पूर्ण तथा कायम रख सकेंगे, इस बातपर प्रत्येक मनुष्यसे विश्वास नहीं किया जा सकता। और विशेष करके उस समय जब कि रूपयोंका नहीं किन्तु ममताका प्रश्न होता है, इन्साफ करनेवालेके चारित्र पर ही निर्भर रहना पड़ता है। जिन देशभक्त नेताओंने अपना जीवन देशको अर्पण कर दिया है, उनके दृढ चारित्रमें और उनके द्वारा न्यायके जरा भी खंडित होनेमें किसीको लेशमात्र भी डर नहीं हो सकता। क्योंकि एक तो वे किसी पक्षकी ओर झुक नहीं सकते और दूसरे उनमें कानूनकी जानकारी भी देशी राज्यों या सरकारी अदालतोंके न्यायाधीशोंकी अपेक्षा कम नहीं होती है। ऐसी दशामें शुद्धनिष्ठा और विशाल कानूनी ज्ञान इन दोनोंके संयोगसे इस बातकी हरतरह संभावना है कि उनके द्वारा वास्तविक न्याय मिलेगा।

४ अपने धर्मसम्बन्धी प्रश्नोंका फैसला देशके नेताओंके द्वारा होना, अपने समाज और अपने देश दोनोंके लिए गौरवकी बात है। विरुद्ध इसके अपने देशके नेताओंके द्वारा इन्साफ करानेकी सलाह न मानना, एक प्रकारसे अपना और अपने देशका अपमान करना है। हम अपना न्याय यदि आप नहीं कर सकते हैं, तो मानों यह साबित करते हैं कि हम अयोग्य हैं। और फिर हम तो वणिक हैं, सयाने हैं, हमारे पूर्वज बड़े बड़े राज्योंके मंत्री रहे हैं, नई नई युक्तियाँ सोचनेमें हम प्रसिद्ध हैं। यदि हम भी अपने धर्मसम्बन्धी झगड़ोंका फैसला करनेके लिए अदालतोंमें दौड़े जायँगे, तो फिर हमारा उक्त गौरव कहाँ रहेगा ? इस लिए

अन्तिम प्रार्थना

यह है कि श्वेताम्बर और दिगम्बरोंके बीच जितने तीर्थक्षेत्रसम्बन्धी झगड़े इस समय हो रहे हैं उन सबके मिटानेके लिए और अन्तिम न्याय पानेके लिए सबसे पहले हमारे जो मुकद्दमे कोर्टमें चल रहे हैं उन्हें स्थगित कर देना चाहिए और फिर दोनों पक्षोंके द्वारा चुने हुए एक या अधिक नेताओंको पंच बनाकर, उनके समक्ष दोनों पक्षोंके खास पक्षकारों या वकीलोंके द्वारा तमाम हालात, सुबूत, दलीलें आदि उपस्थित कराना चाहिए और इस बातके पहले ही प्रतिज्ञापत्र लिख देना चाहिए कि वे जो फैसला करेंगे उन्हें दोनों पक्षवाले हमेशाके लिए मानेंगे। इस प्रकार पुराना वैर विरोध मिटाना, परस्पर सच्चे हृदयसे क्षमावनी करना और भविष्यमें भाईचारेकी मजबूत गाँठसे जुड़े रहनेका व्रत लेना, यही श्री महावीर भगवानके सच्चे भक्तोंका या दिगम्बर-श्वेताम्बरोंका कर्तव्य है। इसीमें दोनोंकी प्रतिष्ठा है, शोभा है, बल है और इसीमें पवित्र जैनधर्मका कल्याण और यशोविस्तार है।

यदि हम इस प्रकार वैरविरोध न टाल सकेंगे तो हमारा सांत्वसरिक प्रतिक्रमण या क्षमावनी पर्व निरर्थक है, केवल एक दिखानेकी चीज है।

यदि समझते हुए भी हम न चेतेंगे तो इसमें जरा भी सन्देह नहीं है कि जाग्रत अवस्थामें भी बिछौनेमें लघुशंका करनेवाले बालककी तरह मूर्ख गिने जायँगे।

यदि हमसे यह भाई भाईके बीच एकता करनेका प्रयत्न न हो सका, तो सारी पृथ्वीके चौरासी लाख जीवयोनिसे मित्र भाव करनेका भगवानका वचन हम कहाँसे पाल सकेंगे और तब हमारा मनुष्यभव तथा जैनधर्मका पाना न पानेके ही बराबर ठहरेगा। इस लिए

तीर्थ-सम्बन्धी सारे झगड़ोंके पक्षकार

सज्जनोंसे हमारी प्रार्थना है कि, आप लोग आज-क्षमा करने-करानेके दिन-बैरभाव भुलानेवाले दिन-अवश्य अवश्य, सच्चे हृदयसे, गहरे उतरकर विचार कीजिए और यदि

कोई धर्मात्मा भाई इसी प्रकारका कोई मार्ग सूचित करनेके लिए और उसके सम्बन्धमें आपसे सलाह लेनेके लिए आपके समीप आकर उपस्थित हो, तो आपको चाहिए कि श्री वीर परमात्माकी आज्ञाको अपनी दृष्टिके सम्मुख रखकर उसे उचित उत्तर दें और उसकी पंच नियत करनेकी योजनामें कुछ संशोधन परिवर्तन करना आपको उचित जँच पड़े तो करनेकी सम्मति दे दें कि जिससे इस विषयमें प्रयत्न करनेवाले सज्जन दोनों पक्षोंके विचारोंको एक करके जितनी जल्दी हो सके पंच नियत करनेके काममें सफलता प्राप्त कर सकें;—और

सारे भारतवर्षके श्वेताम्बर-दिगम्बर भाईयोंसे

यह प्रार्थना है कि, यह जमाना आन्दोलनका है, इस लिए आप सबलोग इस प्रार्थनापत्रमें सूचित किये हुए आन्दोलनमें अवश्य शामिल हूँ जिए और अपने मुखिया भाईयोंसे कहिए तथा उनको चिट्ठियाँ लिखिए कि हम लोग धर्मके निमित्त लड़नेको राजी नहीं हैं और आग्रहपूर्वक प्रेरणा करते हैं कि देशके नेताओं द्वारा सारे झगड़ोंका फैसला कराया जाय। श्वेताम्बर भाईयोंको अपने श्वेताम्बर अगुओंके पास और दिगम्बर भाईयोंको दिगम्बर अगुओंके पास पत्र भेजना चाहिए। इस तरह जब उनके पास हजारों पत्र एकट्टे होंगे तब उनका इतना प्रभाव पड़ेगा कि दोनों पक्षोंके अगुओंको यह बात माननी ही पड़ेगी। लोकमत बहुत बड़ा भारी बल है। इस बलसे हम जो चाहें उसी काममें सफलता प्राप्त कर सकते हैं। इस लिए प्यारे भाईयो,—

अपने अगुओंके पास पत्र भेजकर उनपर प्रभाव डालो,
अपने गाँवों और शहरोंमें सभायें करके इस विषयमें लोकमत जागृत करो,
और आपमें जितनी शक्ति हो, उस सबको लगाकर ऐक्यबलको दृढ करो।

क्योंकि

जहाँ एकता है वहीं शक्ति है,
जहाँ एकता है वहीं सुख है,
जहाँ एकता है वहीं स्वातन्त्र्य है,
जहाँ एकता है वहीं गौरव है।

और

एकता ही महावीरका 'संघः' है।
एकता ही मुक्तिका 'मंत्र' है।

इस एकताके बिना किसीका काम नहीं चल सकता।
इस एकताको छोड़कर क्या आप सुखी हो सकेंगे ?

नहीं, नहीं, कदापि नहीं !
एकता नहीं तो धर्म नहीं,
और

धर्म नहीं तो दिगम्बर श्वेताम्बर भी नहीं ।

याद रखिए, कि
लड़ना इसका अर्थ है दोनों पक्षोंका निर्बल पड़ना,
अथवा

लड़ना इसका अर्थ है दोके हाथकी रोटी तीसरेको खिलाना ।

लड़कर जीतनेवाला पक्ष भी अन्तमें यही कहता है कि ' इसकी अपेक्षा तो चुपचाप ही बैठे रहते तो कम हानि उठानी पड़ती । '

धर्म, समाज और देशकी सेवाके लिए
कर्त्तव्य कार्य अनेकानेक पड़े हैं;
परन्तु

धनका टोटा है, उदारताकी कमी है,

और इतने पर भी

धर्मके निमित्त धन एकट्ठाकरके उसमेंसे परस्पर युद्ध करोगे ?
नहीं सज्जनो, नहीं ।

दिगम्बर—श्वेताम्बर दोनों परस्पर हाथ मिलाओ

और संयुक्त हाथोंके बलसे

सारे संसारको ' शासनप्रेमी ' बनाओ !

इसी भावना और इसी प्रार्थनाके साथ विराम लेते हैं हम

आपके धर्मबन्धु—

सेठ विनोदीराम-बालचन्द्र (झालरापाटन)

जगमन्दरलाल जैनी एम. ए. बार-एटला

(जज हाईकोर्ट, इन्दौर)

अजितप्रसाद जैन एम. ए. एलएल. बी.

(एडीटर, जैनगजट, लखनौ)

लल्लुभाई प्रेमानन्ददास पारेख, एल. सी. ई.

ए. बी. लट्टे एम. ए. एलएल. बी.

ए. पी. चौगुले बी. ए. एलएल. बी.

रतनचन्द्र खीमचन्द्र मोतीचन्द्र

(बम्बई—श्वेताम्बर संघके संघपति)

देवकरण मूलर्जा

गुलाबचन्द्र देवचन्द्र जवेरी

रतनचन्द्र तलकचन्द्र मास्तर

लखमसी हीरजी मैशरी बी. ए. एलएल. बी.

खीमजी हीरजी कायाणी जे. पी.

अमरचन्द्र घेलाभाई

सूरज भानु वकील, देवबन्द,

जुगलकिशोर मुख्तार ”

ज्योतीप्रसाद जैन ”

(सम्पादक, जैनप्रदीप)

ठाकोरदास भगवानदास जवेरी, बम्बई.

शाह चुनीलाल हेमचंद ”

चेतनदास जैन बी. ए.

(आ० सै० भारतजैनमहामण्डल)

दयाचन्द्र गोयलीए बी. ए.

(सम्पादक जातिप्रबोधक)

नाथूराम प्रेमी (सम्पादक जैनहितैषी)

गाँधी सूरचन्द्र शिवराम

वाडीलाल मोतीलाल शाह (एडीटर, जैनहितेच्छु)

सूचना—इस महत्वके विषयमें यदि कोई सज्जन अनुभवयुक्त सम्मति देनेकी कृपा करेंगे तो वह दोनर्ग सम्प्रदायके उन सज्जनोंके पास जो इस आन्दोलनको पसन्द करते हैं तत्काल ही पहुँचा दी जायगी और उसका उचित उपयोग किया जायगा । यदि किसी शहरमें सभा आदिके रूपमें आन्दोलन होगा और उसकी रिपोर्ट हमारे पास कोई सज्जन भेजेंगे तो वह किसी भी पक्षके हकमें जरा भी हानि न पहुँचे इस प्रकारकी सावधानी रखकर सुधार दी जायगी और समाचारपत्रोंमें प्रकाशित करनेके लिए भेज दी जायगी । यदि कोई महाशय शुभेच्छुकके रूपमें सलाह या समाचारको गुप्त रखनेके लिए लिखेंगे, तो उनकी आज्ञाकी अक्षरशः पालना की जायगी ।

१ इस आन्दोलनको पसन्द करनेवाले समस्त दिगम्बर-श्वेताम्बर भाईयोंको अपनी सहानुभूति नीचे पतेपर शीघ्रही भेजनेकी कृपा करनी चाहिए ।

२ उक्त प्रार्थनापत्रमें पंच नियत करनेकी जो सूचना है उसका अर्थ यह है कि १ पंचोंका चुनाव दोनों पक्षवालोंके द्वारा ही हो सकेगा, २ पंच एक या अधिक चुने जा सकेंगे, ३ पंच अजैन ही बनाये जायेंगे; परन्तु अजैन प्रमुखकी सहायताके लिए दोनों सम्प्रदायोंके कुछ विचारशील अगुओंकी कमेटी बनानेकी यदि; पक्षकारोंकी इच्छा होगी तो ऐसा भी वे कर सकेंगे । गरज यह कि प्रार्थना पत्र तो केवल मार्गसूचन करता है पर काम किस तरह किया जाय इसका निर्णय पक्षकारोंके ही हाथसे होगा और वे इस विषयमें अपने अपने सम्प्रदायके अगुओंकी सलाहसे सकेंगे ।

—निवेदक,

वाडीलाल मोतीलाल शाह, २५३ नागदेवी, बम्बई.

[तारका पता—Brass—Bombay; टेलीफोन नं० २५५६]

प्रकाशक—नाथूराम प्रेमी, जैन ग्रंथरत्नाकर कार्यालय, हीराबाग—बम्बई:

मुद्रक—चिं. स. देवळे, मुंबईवैभव प्रेस, सैंडस्ट रोड, गिरगांव, मुंबई.